# कितनी दूर किनारा

9669
2669

के. पी. रायज़ादा

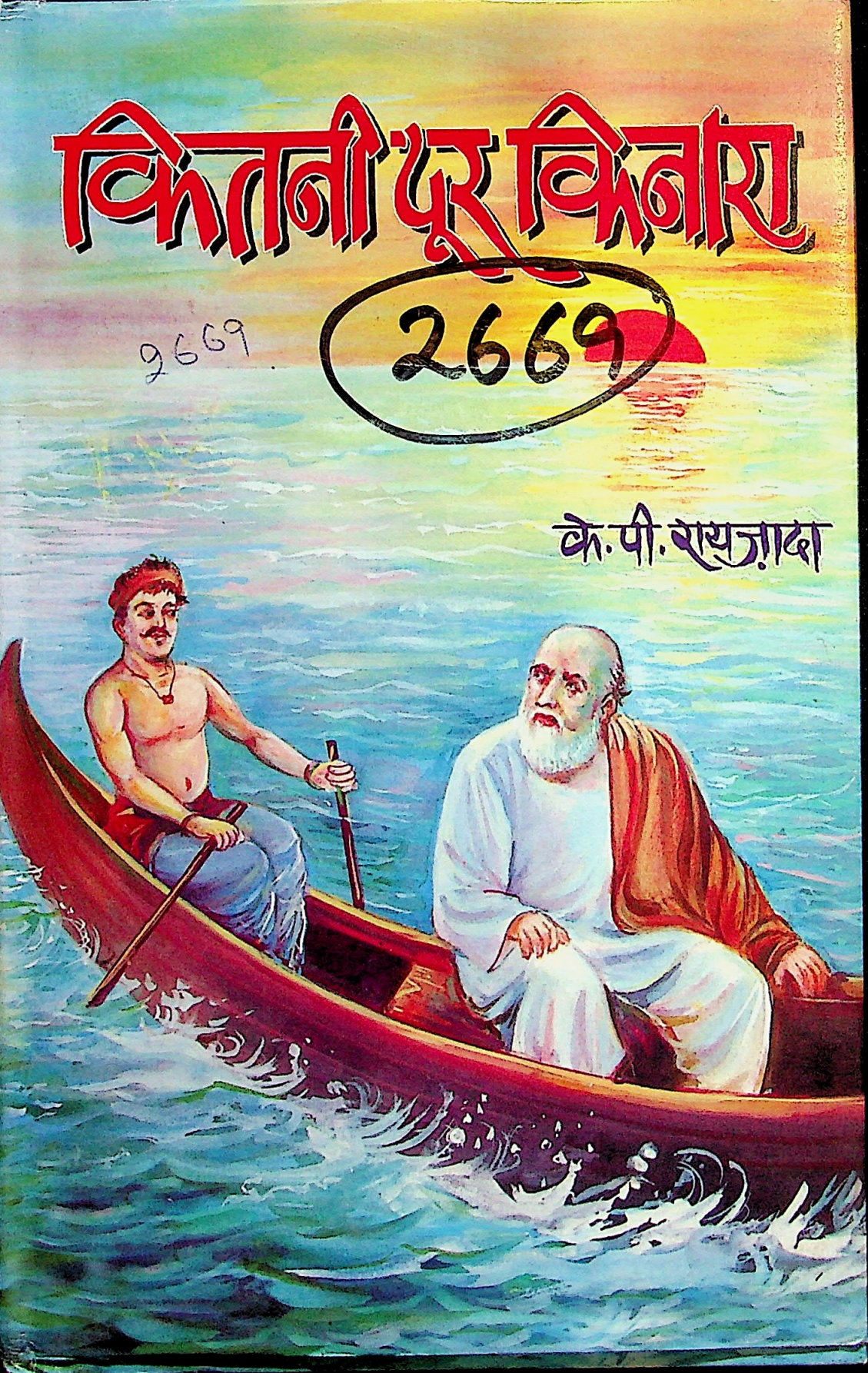

# कितनी दूर किनारा

के.पी. रायज़ादा

2669

प्रकाशक :

आर्य पब्लिशिंग हाउस

करोल बाग, नई दिल्ली-110005

प्रकाशक :
सुखपाल गुप्त
आर्य पब्लिशिंग हाउस
1569/30, नाईवाला, करोल बाग
नई दिल्ली-110005

© लेखकाधीन

ISBN-978-81-7064-100-1

प्रथम संस्करण : 2010

मूल्य : 275.00 रुपये

शब्द संयोजन :
प्रखर इंटरनेशनल

मुद्रक :
कैपीटल ऑफ़सैट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

# सम्बोधन

प्रिय प्राण,

आज तुम्हें गये तीस वर्ष से अधिक हो गयें हैं पर लगता है, कल की ही घटना है। समय की गति बड़ी विचित्र है। प्रतीक्षा में वही अन्तराल बहुत बड़ा लगता है और वियोग में वही छोटा लगता है।

कभी तुमने कहा था ''विवाह की 25वीं वर्षगाँठ पर तुम अपनी रचनाओं का संकलन मुझे उपहार में देना''। निष्ठुर नियति ने यह बात सुन ली होगी और उसने तुम्हारी प्रथम बरसी पर यह अवसर सुलभ करा दिया। अव्यवस्थित मन स्थिति में अधूरे मन से उस समय अधूरी भेंट ''प्यार ने जो कहा, कह दिया गीत में'' के रूप में तुम्हें दी थी। 1978 से अब तक बहुत समय बीत गया। बहुत समय अपने को संभालने, संयत और व्यवस्थित करने तथा अपने दुख को सबसे बड़ा दुख मानने की स्वाभाविक भूल में निकल गया। तभी कान में कहीं से यह शब्द गूँजे कि—

**अश्रु आख़िर अश्रु हैं, शबनम नहीं है**
**पीर आख़िर पीर है सरगम नहीं है**
**उम्र के त्योहार में रोना मना है**
**ज़िन्दगी है ज़िन्दगी, मातम नहीं है**

छोटी कक्षा में कहीं पढ़ा था कि भावना से कर्त्तव्य ऊँचा होता है। तब इस वाक्य के शाब्दिक अर्थ समझ लिये थे। वास्तव में उसका भावार्थ समझने और उन शब्दों को जीवन में जीने का समय अब आया था। फिर तुम्हारे स्वप्नों को, तुम्हारे अधूरे छूटे हुए कार्यों को, तुमको दिए वचनों को, पूरा करने के कर्त्तव्य का निर्वाह भी करना था।

25 अगस्त 1979 को तुम्हें श्रद्धांजलि रूप में ''प्यार ने जो कहा कह दिया गीत में'' देकर लेखिनी को भी तुम्हें सौंपने का मन बना लिया था किन्तु एकाकी क्षणों में हृदय ने जब कुछ कहा तो उसका आग्रह भी टालना असम्भव हो गया और उस अभिव्यक्ति से अर्न्तव्यथा की उद्विग्नता को शान्ति मिली और कर्त्तव्य पथ पर चलने का बल भी मिला।

अब तो बहुत समय बीत गया। जिस प्लाट को हम दोनों बहुत मन से देखने आते थे वहाँ अच्छा भवन 'वेद निवास' निर्मित हो चुका है। तुम्हारे जाने के बाद तुम्हारे छूटे अधूरे कामों को पूरा करने का उत्तरदायित्व प्रिय गार्गी व प्रिय अर्चना ने सम्भाला। गार्गी की संरक्षता में तुम्हारी बनाई जोड़ी गृहस्थी को पूर्ण निष्ठा और कर्त्तव्य परायणता से अर्चना ने संवारा जिससे ''वेद निवास'' के आँगन में सभी का यथानुसार मान सम्मान व स्वागत आज तक हो रहा है तथा तुम्हारी परम्पराओं और गृहस्थी को कुशलता से आगे बढ़ाया है।

इस अन्तराल में परिवार में दो सदस्य और जुड़े। एक तुम्हारे दामाद आलोक जो सर्व-गुण-सम्पन्न और आदर्श मूल्यों के कुबेर हैं। दूसरी तुम्हारी पुत्र वधू मधुलिका जो सुशील, विनम्र और अच्छे संस्कारों की धनी है। परिवार की श्री सुख वृद्धि में सभी का योग है।

तुम्हारी गुड्डन, तुम्हारे पप्पू तुम्हारे आशीर्वाद से अपने गृहस्थ जीवन में सम्पन्न व सुखी हैं। तुम्हारे दो पोते और दो नाती हैं। उनके पास अच्छे संस्कार हैं। तुम्हारे चित्र को देखकर सबसे बड़ी दादी और सबसे बड़ी नानी के रूप में तुम्हें समझ और पहचान लेते हैं।

एक और परिवार जो तुम्हें भाभी के सम्बोधन से मान देता था, मिश्रा परिवार, जो तुम्हारे समय से जुड़ा था आज भी उसी आत्मीयता से जुड़ा है। अपने पराये की क्षीण रेखा अब धूमिल हो गई है। सम्बन्धों के दीप का प्रकाश-सुख दोनों पक्षों के समय समय पर तेल बाती को जुटाने पर निर्भर करता है अन्यथा सम्बंध मोम की बाती के समान जलकर चुक जाते हैं। उसके पुनः जलने का कोई उपाय नहीं होता।

और हम आज उम्र के इस पड़ाव पर तुम्हें 'शेष' जो बचा है, उसे **'कितनी दूर किनारा'** के रूप में भेंट कर 25 अगस्त 1979 की अधूरी भेंट को पूर्ण कर रहे हैं यह गुनगुनाते हुये कि

**''माँझी कितनी दूर किनारा''**

शेष संकलन प्रस्तुत है, स्वीकार करो।

तुम्हारा ही

1.1.2010

आज इतनी दूर तुम संदेश भी कोई न आता,
आह भी तुमको न पाती गीत पथ से लौट आता।
हृदय में उच्छ्वास उठते, बादलों से बिखर जाते
बीच ही में, पर तुम्हारे देश तक कोई न जाता।

## IN MEMORIAM

When day is done and shadows fall
We miss you dear most of all
We miss your face, we miss your ways
With whom we spent our happiest days
A beautiful memory we always hold
Of you, whose worth can never be told
Till memory fades or life departs
You will live and live in our hearts.

# दो शब्द

''**कितनी दूर किनारा**'' चार खण्डों में विभक्त है। पहला 'श्रद्धांजलि', दूसरा 'अर्न्तव्यथा', तीसरा 'युगबोध', चौथा 'पारिवारिक'।

'श्रद्धांजलि' में संकलित रचनाओं के विषय में मुझे कुछ विशेष नहीं कहना है। केवल इतना भर कि प्रत्येक माह की 25वीं तिथि को हवन के पश्चात् जो श्रद्धा-सुमन चढ़ाये थे, उन्हीं को पुन: माला में गूँथकर श्रद्धांजलि-स्वरूप प्रस्तुत किया है। मेरा कोई भी संकलन हो श्रद्धांजलि मेरे जीवन का मंगलाचरण है, यों यह खण्ड पूर्व संकलन ''प्यार ने जो कहा, कह दिया गीत में'' था।

इसी खण्ड में दो श्रद्धांजलि और हैं। एक पूज्य पिताजी के प्रति और दूसरी अपने आदरणीय बड़े भाई (छोटे दादा) के प्रति। पूज्य पिताजी के प्रति श्रद्धांजलि दिवंगता के समय में ही लिखी थी जिसके प्रथम छंद को सुनकर अनायास ही उनकी आँखें भर आई थी। उनके मन में मेरे पिताजी के लिये बहुत सम्मानीय स्थान था।

आदरणीय भाई साहब से मेरा 65 वर्ष का साथ रहा। मैंने तो केवल आदर ही दिया किन्तु उन्होंने किस किस रूप में, कब कब, क्या क्या दिया इसको शब्दों में व्यक्त करना मेरी अभिव्यक्ति की क्षमता सीमा से परे है। अत: उनके प्रति श्रद्धांजलि की अभिव्यक्ति में यही क्षमता सीमा मेरी विवशता थी।

'अर्न्तव्यथा' में संग्रहीत रचनाएँ 79 से बाद की हैं क्योंकि दिवंगता के सहसा जाने के पश्चात अपने आकुल मन को बहलाने के लिये, एकाकी मन को समझाने के लिये, अन्तर की पीड़ा को सहलाने के लिये मेरे पास गीतों में अभिव्यक्ति से, कविता के आँचल से आँसू पोंछने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय भी नहीं था।

'श्रद्धांजलि' और 'अर्न्तव्यथा' की रचनाओं का जन्म वेदना, वियोग और संघर्ष की मनःस्थिति में हुआ है पर मूल स्वर आशा, सृजन और प्रेम का है भाषा ने मेरा साथ नहीं दिया पर अनुभूति ने मेरा साथ नहीं छोड़ा। सब गीतों की पृष्ठभूमि, धरातल और विषय वैयक्तिक है तो भी सम्भव है पाठक अपने हृदयों में कहीं इनकी प्रतिध्वनि सुन सकें बचनबद्धता के रूप में अथवा प्रतिबद्धता के रूप में।

'युगबोध' में सामाजिक और राजनैतिक धरातल पर लिखी आज तक की रचनाओं का संग्रह है। कुछ वह रचनायें भी हैं जो दिवंगता को विशेष प्रिय थी उनको पूर्व संग्रह ''प्यार ने जो कहा लिख दिया गीत में'' से पुनः लिया है। मेरे सक्रिय जीवन के निर्माण काल पर स्वतंत्रता आन्दोलन के समय के संस्कार, बापू नेहरू का प्रभाव, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक विचारधाराओं की मेरे संवेदनशील हृदय पर प्रतिक्रियायें ही युगबोध की रचनाओं में अभिव्यक्त हुई हैं।

'पारिवारिक' खण्ड के अर्न्तगत परिवार के मांगलिक कार्यों, आयोजनों के अवसरों पर प्रभु की कृपा के प्रति कृतज्ञता व आशीर्वाद की सहज अभिव्यक्ति है। इन सभी रचनाओं में दिवंगता ही परोक्ष रूप से प्रेरणा थीं। अपनी सीमित भाषा क्षमता से मैंने केवल उनकी भावनाओं को लिपिबद्ध किया है।

1948 से 1978 के अन्तराल की रचनायें ''प्यार ने जो कहा, कह दिया गीत में'' में संकलित है, उन्हें पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से दुहराने का कोई प्रयोजन नहीं था क्योंकि वह उस अतीत से सम्बद्ध हैं जो इतने लंबे अंतराल के बाद अत्यंत धूमिल हो चुका है। मेरी स्मृति भी अब वहाँ तक नहीं जा पाती, सम्भव है दिवंगता भी विस्मृत कर चुकी होंगी।

अपनी आयु के 80वें पड़ाव पर 1979 में दिवंगता की स्मृति को दी अधूरी भेंट को पूरा करने और ऋण मुक्त व भार मुक्त होने का यह ''कितनी दूर किनारा'' एक प्रयास है।

मैं स्वर्गीय पिताजी और अपने सबसे बड़े भाई श्री आनन्द प्रकाशजी का अत्यंत आभारी, ऋणी हूँ, जिनके आशीर्वाद व कृपा के बिना मैं कुछ भी न होता।

मैं श्री सुखपाल जी व उनके सुपुत्र चि० नवीन गुप्ता आर्य पब्लिशिंग

हाउस का आभारी हूँ कि मेरी भावनाओं का आदर किया, व्यक्तिगत रुचि ली और लीक से हटकर ''कितनी दूर किनारा'' के प्रकाशन को सम्भव बनाया। आर्य परिवार से मेरे सम्बन्ध 50 वर्षों से अधिक समय से हैं और यह आर्य परिवार के सदस्यों के संस्कार हैं कि सम्बन्ध जैसे कल थे, वैसे ही आज भी हैं।

कलाकार प्रिय जोशी जी का बहुत आभारी हूँ जिन्होंने संकलन के आवरण पृष्ठ को भावनाओं के अनुरूप अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति व साज सज्जा दी।

अन्त में अपनी बात इस प्रकार समाप्त करना चाहूँगा कि

**रोई शबनम, गुल हंसा, ग़ुन्चे खिले मेरे लिये**
**जिस से जो भी हो सका, उसने किया मेरे लिये**

—कीर्तिप्रकाश रायज़ादा

07/11/2009
बी/163, 'वेद निवास'
सरस्वती विहार, दिल्ली
फोन : 27019721
मो. : 9811462611

# विषय सूची


**श्रद्धांजलि**

बिन साथी कितना भी चल लूँ 1
प्यास लिए लौटा हूँ 2
मेरा मन अब भी संन्यासी 4
विदा समय क्यों मौन हो गईं? 6
याद आ गये 9
याद आई तुम्हारी बहुत रात भर 12
तब तब ध्यान तुम्हारा आया 15
चलने को अब भी चलता हूँ 17
मुझको कल पर विश्वास नहीं है 19
तुम न आई 22
अभी और कितना जलना है 24
वह गीत नहीं लिख पाया हूँ 25
पूज्य पिताजी को
सादर श्रद्धांजलि 27
पूज्य बड़े भाई
(छोटे दादा) के प्रति 29

**अन्तर्व्यथा**

अमरनाथ यात्रा के बाद 33
शेष बचे हैं 35
इस तरह से कटा रात का
हर पहर 36
देर हो जाये तो 38
बीत गये इतने दिन 39
लौटा दो वह जीवन 40
एक आशा 42
खोल दो पर एक अन्तर्द्वार 44
जो तुम्हें मैं भूल जाऊँ 46
कानपुर के नाम 47
याद बहुत आती है 50
तुम्हारा ध्यान आया 52
आ गया हूँ मैं तुम्हारे देश 54
सोचता हूँ 56
जीवन संध्या का गीत 58
इन गीतों में मेरा जीवन 61
जीवन से 63
मुझे न तुम पहचान सकोगे 66
कैसे कह दूँ मैं नया वर्ष आया 68
परिणय का आधार 70
कितनी दूर किनारा 72

**युगबोध**

कलाकार मनु की
कलाकृतियों का भावानुवाद 75
बरसो घन जी भर बरसो 81
विनोबा तुमको कोटि प्रणाम! 83
अछूतों की बस्ती 85
यह बापू का सबसे सुन्दर पूजन 89
ग़ज़ल 91
ग़ज़ल 92
गणतंत्र दिवस पर 93
राजघाट पर एक शाम 94
जन जन की जय 100
महिला वर्ष 102
चमचों की जय, चमचों की जय 105

तब तक सृजन अधूरा 110
गीत गाओ न मेरे 113
एक स्पष्टीकरण 115
नव वर्ष—समय का देवता 117
15 अगस्त 1947 119
एक दीपावली—एक चिन्तन 121
विदेश में देश की याद 123
बंगाल का अकाल (1940) 125
किस पर गर्व करूँ? 128
तुमको यही शिकायत 131
राजस्थान भ्रमण पर 133
समय का दर्शन 134
कृष्ण और गीता 136
राम का मंदिर 137

## पारिवारिक

एक आग्रह 143
शुभ विवाह पर आशीर्वाद 145
प्रिय गार्गी के शुभ विवाह पर 147
प्रिय विदुला की विदाई पर 149
चि० भानु (नाती) के जन्म पर 151
चि० असीम के जन्म पर 152
चि० जगमग/अंकुर को आशीर्वाद 153
प्रिय प्रद्युमन व सुषमा के विवाह
की रजत जयन्ती पर 154
बँगलौर के प्रति पाँच कुण्डली 155
घर—एक दर्शन 157

# श्रद्धांजलि

# बिन साथी कितना भी चल लूँ...

जप, तप, व्रत, उपवास,
और सब नियम निभाकर
मेरी उमर बढ़ाई,
अपनी उमर घटाकर।

त्यागमयी यह कर्ज़ तुम्हारा कैसे भला चुका पाऊँगा?
एक दीप भर शेष रह गईं, कब तक इसे जला पाऊँगा?
रोज़ तुम्हें ढूढूँगा लेकिन तुमको ढूँढ़ कहाँ पाऊँगा?
स्मृतियों के भीड़ भरे मेले में ख़ुद ही खो जाऊँगा।

रोते रोते दिन बीतेगा
जगते जगते रात कटेगी
बिन साथी कितना भी चल लूँ
पथ की दूरी नहीं घटेगी।

(अस्थि-विसर्जन)
२७ अगस्त, ७८

# प्यास लिये लौटा हूँ

मैं तो पनघट की ओर चला पर पहुँच गया मरघट में,
अब पथ में लुटे हुए राही-सा बेबस घर लौटा हूँ।
यूँ तो सब कुछ भस्म हो गया पल भर में लपटों में,
फिर भी मैं मरघट से जीवन की प्यास लिये लौटा हूँ।

मैंने सपने रख दिये चिता में भाग्य-पराजित होकर,
औ' ख़ुद ढोई अरमानों की अर्थी अपने कंधों पर।
मैं देकर सिंदूर चिता को राख लिये लौटा हूँ,
फिर भी मैं मरघट से जीवन की प्यास लिये लौटा हूँ।

मैं सपनों को ही जीवन का सत्य समझ बैठा था,
अपनी सुखमय दुनिया को ही संसार समझ बैठा था।
मैं दे जीवन का राग धधकती आग लिये लौटा हूँ,
फिर भी मैं मरघट से जीवन की प्यास लिये लौटा हूँ।

कोमल किसलय पातों से डाली डाली झूल रही थी,
कलियों से, कुसुमों से क्यारी क्यारी फूल रही थी।
पर मैं देकर मधुमास क्रूर पतझार लिये लौटा हूँ,
फिर भी मैं मरघट से जीवन की प्यास लिये लौटा हूँ।

मैंने गाये थे गीत मिलन के गंगा की लहरों में,
प्रतिध्वनित किसी के उर से होते थे जो मौन स्वरों में।
अब देकर मेघ मल्हार अश्रु की धार लिये लौटा हूँ,
फिर भी मैं मरघट से जीवन की प्यास लिये लौटा हूँ।

हैं भाग्य-विजित हम सभी, विवशता विधि का क्रूर नियम है,
इतना ही मिल गया भाग्य से, यह भी क्या कुछ कम है?
मैं देकर मिलन- प्रभात विरह की रात लिये लौटा हूँ,
फिर भी मैं मरघट से जीवन की प्यास लिये लौटा हूँ।

२५ सितम्बर, १९७८

# मेरा मन अब भी संन्यासी

जितना जग ने चाहा उतना,
तन का रूप सँवारा मैंने।
बीत गये इतने दिन लेकिन—
मेरा मन अब भी संन्यासी।

यूँ तो प्यार बहुत पावन है,
मेरी ही कुछ थी मजबूरी।
प्रीत-हाट में चुका न पाया
मैं सपनों की क़ीमत पूरी।
कितना मुझको दंड मिला है—
औ' थी कितना भूल ज़रा-सी,
बीत गये इतने दिन लेकिन मेरा मन अब भी संन्यासी।

जब ख़ुशियों से महक रही थी,
जीवन की हर क्यारी क्यारी।
औ' सपनों के राजतिलक की,
जिस क्षण थी पूरी तैयारी।
ऐसा उल्कापात हो गया—
पल में स्वप्न हुए बनवासी,
बीत गये इतने दिन लेकिन मेरा मन अब भी संन्यासी।

यूँ तो रोज़ सजाता हूँ मैं,
सूने घर का कोना कोना।

रोज़ बुलाता हूँ आँखों में,
कोई सुन्दर स्वप्न सलोना।
पर कोई कह जाता मन से—
जीवन का शृंगार उदासी,
बीत गये इतने दिन लेकिन मेरा मन अब भी संन्यासी।

चलने को चलता हूँ लेकिन,
बिन मंज़िल के किस पथ जाऊँ?
जीवन के स्वर बिखर गये सब,
किन गीतों से मन बहलाऊँ?
संध्या स्वागत करती लेकिन—
ऊषा कहती विदा प्रवासी,
बीत गये इतने दिन लेकिन मेरा मन अब भी संन्यासी।

२५ अक्तूबर, १९७८

# विदा समय क्यों मौन हो गईं ?

बरसों जिसे बचाया, पल भर में कैसे वह दीप बुझ गया ?
पग पग पर क़समें खाई थीं, फिर भी कैसे साथ छुट गया ?
कैसे सारी साँस चुक गईं ? कैसे अन्तिम घड़ी आ गई ?
मैं सिरहाने ही बैठा था, कैसे तुमको नींद आ गई ?

उपवन में दो फूल अधखिले, उन पर असमय पतझर कैसे ?
अनगाये थे गीत बहुत से, टूट गया जीवन-स्वर कैसे ?
अब तक कुछ तिनके जोड़े थे, अभी नीड़ निर्माण शेष था।
अभी सिर्फ़ सपने देखे थे, स्वप्नों का शृंगार शेष था।

दो पग चलना क्या चलना है ? अभी सफ़र कितना बाक़ी था,
कुछ रेखायें भर खींची थीं, रंग अभी भरना बाक़ी था।
कितना कुछ तुमको कहना था, कितना कुछ मुझको कहना था ?
प्राण, हाय इस रामायण का उत्तर काण्ड अभी रचना था।

असमय स्वप्न हुए वनवासी, गीत सभी रह गये अधूरे,
अनब्याही सब साध रह गईं, वचन नहीं हो पाये पूरे।
ऐसे ही अगणित प्रश्नों का ढूँढ़ रहा हूँ अब मैं उत्तर,
एक प्रश्न मेरे अंतर को पर व्याकुल करता रह रह कर।

ऐसा क्या अपराध हो गया,
भूल भला वह कौन हो गई ?
जीवन भर तो मुखर रहीं तुम,
विदा समय क्यों मौन हो गईं ?

धरती से मैं पूछ रहा हूँ बोलो कितना कर्ज़ दिया
अम्बर से भी प्रश्न यही है, बोलो कितना कर्ज़ दिया था ?
जल औ' पवन! तुम्हारे कर्ज़े से भी कब इन्कार किया था ?
पावक! सदा तुम्हारे ऋण को नतमस्तक स्वीकार किया था।

यूँ विधि ने जीवन-धन देकर बहुत बड़ा उपकार किया था,
असमय ऋण लेना था तो क्यों जीवन का व्यापार किया था।
स्वाभिमानिनी, भौतिक ऋण का भार बहुत दिन सह न सकीं तुम,
जग के जर्जर बन्धन में भी प्राण, बहुत दिन रह न सकीं तुम।

कल तक सीमामय थीं, अब निस्सीम हो गईं,
जर्जर तन सब कुछ तज कर निर्वेष हो गया,
पंच तत्त्व का कर्ज़ चुका कर यमुना तट पर
मुक्त हो गईं, और तुम्हारा रोम रोम संदेश हो गया।

तुमसे ही जो शुरू हुई थी, ख़त्म तुम्हीं पर हुई कहानी,
तुम जीवन से मुक्त हो गईं औ' मेरी आँखों में पानी।
रोज़ रात टूटे मन से मैं दुहराऊँगा वही कहानी,
तुमसे ही जो शुरू हुई थी, ख़त्म तुम्हीं पर हुई कहानी।

मेरी व्यथा वही जाने जो पनघट से प्यासा लौटा हो,
या पूजा-थाली गिरने पर जो बिन पूजा ही लौटा हो।
या जिसने अपने अरमानों की अर्थी ख़ुद ही ढोई हो,
या जिसके अन्तर की पीड़ा सारी रात नहीं सोई हो।

''पुन: मिलेंगे'' ही कह जाती तो भी मन को धीरज होता;
जीवन-तट पर जनम जनम तक खड़ा तुम्हारी बाट जोहता;
अब मरुथल की प्यास लिए मैं बोलो किस पनघट पर जाऊँ?
किसकी गोदी में सिर रखकर या पल दो पल को सो जाऊँ?

जाने क्या अपराध हो गया?
भूल भला वह कौन हो गई?
जीवन भर तो मुखर रहीं तुम
विदा समय क्यों मौन हो गईं?

२५ नवम्बर, १९७८

# याद आ गये

प्राण नीड़ तज चले,
रह गये नयन खुले,
स्वप्न धूल में मिले,
गीत नीर बन ढले,
ज़िन्दगी ठहर गई,
साँस साँस चुक गई,
कर सुहाग का सिंगार मौत पर सँवर गई।
रात भी ढली न थी
कि आ गई विदा-घड़ी,
आ गये कहार द्वार,
पालकी चली गई,
दो क़दम चिता बढ़ी तो आँख छलछला गई,
और याद आ गये
लाज से झुके नयन
याद आ गये

× × ×

पंथ था अजान
दूर गाँव था।
साँस का पड़ाव अब
न जाने कौन ठाँव था?
पाँव थे थके थके,
शूल से छिदे छिदे,
अश्रु से पखार कर

पत्र-पुष्प रख दिये।
दो घड़ी रुके न थे
कि आ गई विदा-घड़ी,
और पाँव चल दिये
फिर अनन्त राह पर।
दो क़दम चिता बढ़ी तो आँख छलछला गई
और याद आ गये
वह महावरी चरण
याद आ गये।

× × ×

शेष राख रह गई
शेष रह गया धुआँ,
और ज़िन्दगी—
गहन अंधकार का कुआँ।
चल रहा हूँ किन्तु मन बार-बार सोचता
आज द्वार पर खड़ा कौन बाट जोहता?
तप रहा हूँ जेठ-सा,
जी रहा हूँ श्राप-सा,
जल रहा हूँ इस तरह
कि ज्यों समाधि पर दिया।

× × ×

पंथ कह रहा कि मीत के बिना
चल सका है कौन आज तक यहाँ?
प्राण पूछते हैं कि प्यार के बिना
जी सका है कौन आज तक यहाँ?
फूल कह रहे कि धूप के बिना
खिल सका है कौन आज तक यहाँ?
दीप कह रहा कि वर्तिका बिना
जल सका है कौन आज तक यहाँ?
किन्तु चल रहा हूँ मैं

कि पंथ को बुहार दूँ
तप रहा हूँ इसलिए कि
स्वप्न कुछ सँवार दूँ
जी रहा हूँ इसलिए कि
कर्ज़ कुछ उतार दूँ
जल रहा हूँ इसलिए कि
भोर को पुकार दूँ।
दो घड़ी रुका न था कि याद आ गये मुझे
प्रीत को दिये वचन
याद आ गये
लाज से झुके नयन याद आ गये
दो महावरी चरण याद आ गये
प्रीत को दिये वचन याद आ गये
प्राण नीड़ तज चले
रह गये नयन खुले
ज़िन्दगी ठहर गई
कर सुहाग का सिंगार मौत पर सँवर गई... !

२५ दिसम्बर, १९७८

# याद आई तुम्हारी बहुत रात भर

दर्द की आँख झपकी मगर स्वप्न ने,
याद तुमको दिलाकर जगा ही दिया।
मन-भवन खंडहर में, विरह ने मगर,
याद का कोई पाहुन बुला ही लिया।

दिन भटकते भटकते कटा तो मगर,
रात कैसे कटी? क्या किसी को ख़बर?
पीर करवट बदलती रही रात भर,
आँख रह रह छलकती रही रात भर।

हर सगुन से मनाया, निठुर भाग्य ने,
प्यार का नीड़ फिर भी जला ही दिया।
एक झोंका हवा का चला इस तरह,
प्यार का दीप आख़िर बुझा ही दिया।

प्यार के बिन यहाँ रह सका कौन है?
प्यार के बिन यहाँ चल सका कौन है?
दिन ढले ही बुझा प्यार का दीप, पर
स्नेह-बाती सुलगती रही रात भर।

आज काजल पड़ा रो रहा है कहीं,
माँगते मौन बिछुवे चरण का परस।
रूप कोई खड़ा सामने हो मगर
चाहता सिर्फ़ दर्पण तुम्हारा दरस।

भूल पाया न सिन्दूर अब तक तुम्हें,
औ' महावर बहुत याद करता तुम्हें।
चूड़ियाँ याद करती रहीं रात भर,
लाल बिंदिया बुलाती रही रात भर।

पड़ चुकी है बहुत वक़्त की धूल, पर
प्यार का हर पहर साफ़ आता नज़र।
जानता हूँ कि तुम अब नहीं हो मगर,
किन्तु लगता कि तुम हो खड़ी द्वार पर।

मौन कब की हुई प्रीत की बाँसुरी,
याद की, किन्तु, मीरा भटक ही रही।
एक बदली उमड़ती रही रात भर,
एक सावन बरसता रहा रात भर।

डाल जयमाल तुम झुक गई थीं कभी,
भक्ति-सी, वह मिलन की घड़ी याद है।
सौंप कर स्वप्न सारे चिता को कभी,
आ गया, वह विदा की घड़ी याद है।

साथ ले लूँ किसे ? छोड़ दूँ मैं किसे ?
याद रक्खूँ किसे ? भूल जाऊँ किसे ?
वह मिलन याद आता रहा रात भर,
वह विदा याद आती रही रात भर।

एक तृण-सा समय सिन्धु में बह रहा,
बह रहा हूँ मगर कोई साहिल नहीं।
पंथ की लाज को मीत बिन चल रहा,
चल रहा हूँ मगर कोई मंज़िल नहीं।

राह थकते सँभलते कटी तो मगर,
वक़्त कैसे कटा क्या किसी को ख़बर।
एक आवाज़ आती रही रात भर,
दूर कोई बुलाता रहा रात भर।

क्या पता कौन-सी राह पर फिर मिलें,
कौन से वेष में, कौन-सा रूप धर।
पार अनजान बस्ती, अजाना नगर,
प्राण को प्राण पहचान लेंगे मगर।

प्रीत से, प्राण, पहचान लूँगा तुम्हें,
प्यास से प्राण पहचान लोगी मुझे।
और पहचान के ही लिए मैं मुखर,
गीत गाता अधूरे रहा रात भर।

दीप बोला पवन से, ''बुझाओ न तुम,
भोर तक मैं स्वयं हाय बुझ जाऊँगा।''
फूल बोला, ''न तोड़ो मुझे आज ही,
एक दिन मैं स्वयं ही बिखर जाऊँगा।''

क्रूर विधि का नियम चल रहा है यहाँ,
आदमी सब विवश सह रहा है यहाँ।
आदमी की विवशता खली रात भर,
याद आई तुम्हारी बहुत रात भर।

२५ जनवरी, १९७९

# तब तब ध्यान तुम्हारा आया

तब तब ध्यान तुम्हारा आया,
तब तब याद तुम्हारी आई।

ऊषा ने प्राची से झाँका
डूब गये अम्बर में तारे,
रूप खड़ा दर्पण के आगे—
अपनी उलझी लटें सँवारे।

कहीं सुहागिन खड़ी द्वार दे प्रिय को स्नेह-विदाई,
तब तब ध्यान तुम्हारा आया, तब तब याद तुम्हारी आई।

कहीं भरी सौरभ से क्यारी
कहीं ओस से दूब नहाये,
कहीं कली यौवन-देहरी पर—
या जब पग धरते सकुचाये।

कहीं खिले दो फूल, बेल ने या जब माँग सजाई,
तब तब ध्यान तुम्हारा आया, तब तब याद तुम्हारी आई

जब जब बदरा घिर घिर आये
जब जब रिमझिम गाये सावन,
जब जब मन्द फुहारों से या
झुलस गया विरहा-व्याकुल मन,

जब जब बिजली चमकीं या जब छेड़ गई पुरवाई,
तब तब ध्यान तुम्हारा आया, तब तब याद तुम्हारी आई।

जब जब बना घरौंदा कोई
जब जब बचपन रूठ गया है,
स्नेहभरी मनुहारों से या—
जब जब कोई मान गया है,

आँख-मिचौनी हो या जब हो घिरी सघन अमराई,
तब तब ध्यान तुम्हारा आया, तब तब याद तुम्हारी आई।

कहीं सजा मण्डप आँगन में
किसी चरण को लगा महावर,
कहीं लाज से सहमी-सिमटी
कोई बैठ रही डोली पर,

कहीं चूड़ियाँ खनकीं या जब कहीं बजी शहनाई।
तब तब ध्यान तुम्हारा आया, तब तब याद तुम्हारी आई।

जब जब थका थका दिन बीता
जब जब शाम उदास हुई है,
जब जब मन की वीणा बरबस
प्राणों का उच्छ्वास हुई है,

सुधियों के कोलाहल में या जब जब नींद न आई,
तब तब ध्यान तुम्हारा आया, तब तब याद तुम्हारी आई।

यूँ तो प्राण तुम्हारे बिन ही
जीवन का हर क्षण सूना है,
लेकिन यह सूनापन तब तब
जाने क्यों लगता दूना है।

मन-आँगन में जब जब की है यादों ने पहुनाई,
तब तब ध्यान तुम्हारा आया, तब तब याद तुम्हारी आई।

२५ फ़रवरी, १९७९

# चलने को अब भी चलता हूँ

हर अभिलाषा पीर हो गई,
याद नयन का नीर हो गई,
दोष नियति को कैसे दूँ मैं—
मेरी ही तक़दीर सो गई।

कुछ साँसों का बोझ लिये मैं
चलने को अब भी चलता हूँ,
लेकिन पग किस ओर लिये जाते हैं
मुझको ज्ञात नहीं है।

यूँ तो कई अमावस आईं—
पर पूनम भी आ जाती थी
बादल भी छाये नभ में पर
कोई किरण उतर आती थी

अब यह है अँधियारा ऐसा
दूर दूर तक दीप न कोई,
यह है ऐसी रात कि जिसका
होता कोई प्रात नहीं है।

सब कुछ वैसा ही है यूँ तो—
लेकिन फिर भी बहुत कमी है,
आभूषण शृंगार वही सब
माँग मगर जैसे सूनी है।

सुख जब निर्झर-सा झरता था
हर क्षण गाने का अवसर था,
गाने को अब भी गाता हूँ लेकिन
अब वह बात नहीं है।

विकल विरहिणी सरिता जाने
कब से किसको ढूँढ़ रही है,
रजनी किसकी अगवानी में
कब से अम्बर सजा रही है
चंदा तो है पथिक जनम का
आशा ही सम्बल है सबका,
पर जग में मेरे हित कुछ आकर्षण
या सौगात नही है।

रिमझिम-रिमझिम बरसा सावन
तृप्त हुई धरती की छाती,
अंकुर-अंकुर सिहर गया तन
रह-रह घूँघट पट सरकाती।
मैं ही एक अभागा जो—
मरुथल की प्यास लिये फिरता हूँ,
मेरी प्यास बुझाये सावन के घर
वह बरसात नहीं है

धरती बोली, "सहते जाना
ही जीवन की निठुर नियति है,
विधि की निर्ममता औ' मानव
की परवशता ही अथ-इति है।"
फिर भी अरमानों की बस्ती
उजड़-उजड़ कर बस जाती है,
सह न सके मानव जग में ऐसा
कोई आघात नहीं है।

२५ मार्च, १९७९

# मुझको कल पर विश्वास नहीं है

तुमको कल से आशाएँ
मुझको कल पर विश्वास नहीं है।

जो भी सपना रूठ गया
वह वापस कभी नहीं आया,
निठुर नियति ने जो पल छीने
समय नहीं लौटा पाया।

जो भी बिछुड़ी लहर कूल से
नहीं दुबारा आ पाई,
अम्बर रोया लाख, न कोई
खोया तारा मिल पाया।

जब जब सुबह हुई जीवन में
उसे शाम की नज़र लगी है।
सुबह शाम के आगे
जीवन का कोई इतिहास नहीं है।
तुमको कल से आशाएँ
मुझको कल पर विश्वास नहीं है।

आया वह तूफ़ान सूझती
जिसमें कोई राह नहीं—
पाँव थके हैं, गहन तिमिर है,
संगी कोई साथ नहीं।

जीवन के चौराहे पर मैं—
भटक रहा किस पथ जाऊँ,
मेरी बाट जोहता हो, ऐसा
अब कोई द्वार नहीं।

बिन मंज़िल के साँसों का
बनजारा-सा मैं घूम रहा,
मंज़िल की क्या बात करूँ

पथ का भी कुछ आभास नहीं है।
तुमको कल से आशायें
मुझको कल पर विश्वास नहीं है

फूल झर गया यही व्यथा ले
नहीं दुबारा अब खिलना,
दीप बुझ गया यही पीर ले
नहीं भाग्य में फिर जलना।

निश्चित जो कर दिया नियति ने
वही सभी को सहना है,
आशा भरमाती भटकाती
केवल मन की मृगतृष्णा।

पूछा जब मधु ऋतु से—
"ऐसा क्यों है?" वह हँसकर बोली,
"हर उजड़ी बगिया की
क़िस्मत में होता मधुमास नहीं है।"
तुमको कल से आशाएँ
मुझको कल पर विश्वास नहीं है।

मुझे विरह की साँझ सौंपकर
मधुर मिलन क्षण चले गये,
मेरे सब सपने असमय ही
विधि के हाथों छले गए।

अभी प्रीत ने अरमानों को
जयमाला पहनाई थी,
आये अश्रु-कहार, प्रीत
की डोली लेकर चले गये।

पल में भस्म हुआ सब फिर भी
मरघट थका थका बोला,
"मेरी लपटों में जल जाये
ऐसा कोई प्यास नहीं है,

एक जनम में बुझ जाये जो
वह जीवन की प्यास नहीं है।"
तुमको कल से आशाएँ
मुझको कल पर विश्वास नहीं है।

२५ अप्रेल, १९७९

# तुम न आई

तुम न आई तुम्हारे लिए रात भर,
याद के दीप अगणित जलाता रहा।
जो गये थे सुबह
लौट आये सभी,
एक तुम ही नहीं
किन्तु आईं अभी।
पीर से, नीर से, प्यार-मनुहार से,
हर तरह से तुम्हें मैं बुलाता रहा।

नींद ने हर पलक को
सुलाया मगर,
एक मैं ही अकेला
जगा रात भर।
नींद आई नहीं, यह अलग बात है,
हर पहर दर्द कोई जगाता रहा।

है अमावस वही
और बरगद वही,
प्राण, सब कुछ वही
एक तुम ही नहीं।
याद ने दीप इतने सँजोये कि मैं,
कुछ जलाता रहा, कुछ बुझाता रहा।

खो गया एक तारा
न जाने कहाँ?
कौन फिर मिल सका
है, बिछुड़ कर यहाँ?

व्योम अपने हृदय की व्यथा की कथा,
रात रो रो धरा को सुनाता रहा।

चिर-मिलन आस ले
जी रहे सब यहाँ।
मौत का कर्ज़ लेकिन
सभी पर यहाँ।
प्राण का दीप तिल तिल जला हर पहर,
मैं विवश सांस का ऋण चुकाता रहा।

(वटवृक्ष-पूजन अमावस्या)
२५ मई, १९७९

# अभी और कितना जलना है

भस्मसात् अरमान हो गये
क़फ़न ओढ़कर स्वप्न सो गये,
किस आशा का आँचल पकड़ूँ
सारे ग्रह विपरीत हो गये।

जब जब मेरा मन एकाकीपन को गले लगा रोया
नीरवता ने पूछा मुझसे, "उजड़ी हुई सराय में
अभी और कितना रहना है।"

पग पग गहन विवशता रोई
दूर दूर तक दीप न कोई,
किस देहरी दरवाज़े जाये
मन का भटका हुआ बटोही।

जब जब साँसों का बोझा ढोते ढोते मन ऊब गया
पथ में पड़े हुए पत्थर ने पूछा मुझको रोक कर,
"अभी और कितना चलना है।"

किसी याद का दिया जलाया
किसी याद का दिया बुझाया,
एकाकी रातों का जाने, कैसे
कैसे मन बहलाया।

जब जब रूठी नींद नयन से जब जब पीर नहीं सोई
बुझते हुए दिये की लौ ने मुझसे पूछा काँपकर—
"अभी और कितना जलना है।"

२५ जून, १९७९

# वह गीत नहीं लिख पाया हूँ

जो तुमको प्राण बुला लाये
वह गीत नहीं लिख पाया हूँ
जो तुमको फिर लौटा लाये
वह गीत नहीं लिख पाया हूँ

यूँ तो यादों के दीपों से
कुछ उजियाली हो जाती है
जीवन की गहन अमावस
लेकिन तनिक नहीं घट पाती है
हर आहट पर लगता है
जैसे प्राण तुम्हारी आहट है
यों ही मन बहलाते समझाते
रोज़ भोर हो जाते है

कुछ आ जाते है सांझ ढले
कुछ आ जाते है दीप जले
तुम भी शायद आ जाओगी
पथ देख रहे है द्वार खुले
जब राह देख थक जाता हूँ
तब मेरा मन समझाता है
हर पाहुन बिना निमत्रंण के
आने में कुछ सकुचाता है

कुछ इतनी दूर गई हो तुम, कुछ मेरी भी मजबूरी है
जो तुम्हें निमत्रंण दे आये, वह गीत नही लिख पाया हूँ

हर सुवह गीत के पखों पर
मन का पंछी उड़ जाता है
धरती पर, नभ में, दिगदिगन्त
तुमको आवाज़ लगाता है
सुधियाँ भी पथ में आती है
पद चिन्ह तुम्हारे मिलते हैं
लेकिन जो तुम तक पहुंचा दे
वह पंथ नहीं मिल पाता है

हर साँझ मीत बिन आती है
बदली गहरी हो जाती है
हर अश्रु गीत बन जाता है
हर आह छंद हो जाती है
पर थका थका दीपक मुझको
बुझते बुझते समझाता है
हर रूठा मीत मनाये बिन
आने में कुछ सकुचाता है

कुछ इतना रुठ गई हो तुम, कुछ मेरी भी मजबूरी है
जो रुठा मीत मना लाये, वह गीत नही लिख पाया हूँ

जो तुमको प्राण बुला लाये वह गीत नहीं लिख पाया हूँ
जो तुमको फिर लौटा लाये वह गीत नहीं लिख पाया हूँ

२५ जुलाई, १९७९

# पूज्य पिताजी को सादर श्रद्धांजलि

जितनी दूर गये हो तुम
हमसे अनजाने गाँव में
सुधियों का संसार आज
उतना ही मन के पास है

तुम कुल के माथे का चन्दन, गौरव पुन्य महान थे;
कर्मठ जीवन के सचमुच तुम बहुत बड़े प्रतिमान थे;
अन्तिम साँसों तक जिस घर को अगणित बार संवारा था
मंदिर सा जिसके आँगन को अगणित बार बुहारा था
उसका कोना कोना रोये
आँगन बहुत उदास है
सुधियों का संसार आज उतना ही मन के पास है।

हरी भरी बगिया छोड़ी है परिमल भरी पराग भरी
ख़ुशियाँ सब पायल पहने हैं रागभरी अनुराग भरी
अब उपवन की क्यारी क्यारी में छाया मधुमास है
पर डाली डाली पर अंकित अमिट सृजन इतिहास है
बिन माली सूना है सब
फीका कुसुमों का हास है
सुधियों का संसार आज उतना ही मन के पास है

तन का दिया बुझा पर आदर्शों का दीपक शेष है
मौन हुये तुम किन्तु तुम्हारा जीवन ही संदेश है
फिर भी जीवन पथ पर जाने कब छा जाये अंधियारा
चलते चलते पाँव थके या दिखे न नभ में ध्रुवतारा
तब तुम अम्बर से पथ
दिखलाओगे, यह विश्वास है
सुधियों का ससांर आज उतना ही मन के पास है

०७/३/७८

# पूज्य बड़े भाई ( छोटे दादा ) के प्रति

ज्योति बुझ गई, अवशेषों को
गंगा में कर दिया प्रवाहित
मन-आँगन में पर यादों के
जाने कितने दीप जल गये

किस अनजाने देश गये हो
जाने कितनी दूर गये हो
पर जितना ही दूर गये हो
मन के उतना पास आय गये

× × ×

आख़िर साँसों का सफ़र ख़तम होना ही था
कोई भी जीवन-कथा अनन्त नहीं होती
है दिवस मास में सबका ही जीवन सीमित
पर मन के सम्बधों की उमर नहीं होती

तुम थे परिभाषा सरल हृदय की जीवन में
तुम में मैंने पाई सागर की गहराई
तुम थे मन से आकाश, स्नेह की सरिता थे
या थे तुम सीधी सी तुलसी की चौपाई

सबके दुख को तुमने अपना दुख समझा
सबकी ख़ुशियों में तुमने ख़ुशी मनाई थी
निषकाम कर्म ही सदा तुम्हारा दर्शन था
तुमने जीकर गीता की रीति निभाई थी

जानें कितनी यादों ने मन की देहरी पर
रह रह कर आ सुधियों की साँकल खटकाई
मैं सोच रहा हूँ यह किसकी अनुकम्पा थी
जो मिला मुझे इस जीवन में तुम सा भाई

सब तो गर्व करेंगे तुम पर
मुझ पर गर्व किया था तुमने
इतना प्यार दिया था तुमने
इतना स्नेह दिया था तुमने

स्वर्गवास ४/१०/०२

विसर्जन ६/१०/०२

# अन्तर्व्यथा

# अमरनाथ यात्रा के बाद

जो चरण गुफ़ा तक चलकर आये प्रथम बार,
उन चरणों को मेरा श्रद्धामय नमस्कार।

चलते चलते थक गये पाँव
तब बैठ शिला विश्राम किया
चढ़ते चढ़ते दम फूल गया
तो बैठ कलेजा थाम लिया।
लेकिन मंज़िल पर जाकर ही
जीवन का पुण्य प्रणाम किया,
इसलिए कि श्रद्धा ने न कहीं
पलभर को भी विश्राम किया।

बादल गरजे, बिजली चमकीं
वर्षा ने गति को थाम लिया,
पथ में जब भी मिल गई छाँव
तो बैठ तनिक विश्राम किया।
आख़िर मंज़िल मिल गई क्योंकि
निर्झर-सा ही सारे पथ में,
पल भर भी भक्ति नहीं सोई
मन ने न तनिक आराम किया।

जय अमरनाथ! तुम युग युग का विश्वास अडिग,
जय अमरनाथ! तुम मानव के पौरुष की जय,
जय अमरनाथ! तुम हो जीवन का अमर सत्य,
जय अमरनाथ! तुम सबसे ऊपर हो निश्चय।

हे अर्धचन्द्रधारी! विकास का प्रण हो तुम
हे नीलकण्ठ! विष को मधु-सा पी जाते हो,
तुम भूत, भविष्यत्, वर्तमान को निज त्रिशूल से
जीवन का शाश्वत आधार बनाते हो।
हे डमरुधर! यदि जीवन हो संगीत-भरा
तो क्या डमरु, क्या गन्धर्वों की वीणा है!
हे शंकर! यदि मन सुन्दर है तो आभूषण-हित
मुण्डमाल भी अति बहुमूल्य नगीना है।
जो इच्छाओं की भस्म नहीं मलते तन पर
वह परिधानों में भी नंगे-से लगते हैं,
जिनके मन में आदर्शों का कैलाश नहीं
वह ऊँचे होकर भी बौने से लगते हैं।
तुम हो मानवता के विकास की परिभाषा
तुम मानव के उठने की अन्तिम सीमा हो।
हे प्रलंयकर! ताण्डव का स्वर कहता है तुम
अन्याय सहन करने की अन्तिम सीमा हो।

(अन्तिम रचना जो पन्त अस्पताल में सुनाई)

२४-८-७८

# शेष बचे हैं

झूल पालने में सुन सुन मीठी लोरी
निंदियारी अखियों ने थे कुछ स्वप्न रचे
कुछ तो क़िस्मत की आँधी में बिखर गये
कुछ आँसू बन बहे और कुछ शेष बचे

शेष बचे हैं जो कुछ भी वह मेरे हैं
इसी लिये उनको ही जी भर प्यार किया
सभी हंसे यद्यपि मेरी दुर्बलता पर
पर मैंने उनका जी भी श्रृंगार किया

शेष बचे को जब जब भी आकार दिया
सदा एकसी बनबन जाती है प्रतिमा
प्रीत शिवाले का मैं भाव पुजारी हूँ
मौन समर्पण मेरे उठने की सीमा

कभी सजाया उन को भाव-प्रसून्नों से
कभी हार पहनाया है निज बन्धन का
कभी कभी साड़ी पहनाई सतरंगी
कभी सुनाया गीत हृदय की धड़कन का

मन मंदिर में बनी भाव प्रतिमा जब भी
प्रीत-गीत रच कर उसका श्रृंगार किया
पथ में जाने कितने शूल चुभे लेकिन
पथ का आशीर्वाद समझ स्वीकार किया

किसने मुझको दर्द किया किसने पीड़ा
ऐसा कुछ भी याद नहीं आता मुझको
पाप पुण्य से दूर स्वयं में ही खोया
गाता जाऊँ गीत यही भाता मुझको

# इस तरह से कटा रात का हर पहर

इस तरह से कटा रात का हर पहर,
दीप जलता रहा, लौ मचलती रही।
प्राण, आया यहाँ पर बहुत बार मैं
और लौटा यही ले हृदय की जलन,
थी धरा भी यही, था गगन भी यही
पर अधूरा अधूरा लगा सब सृजन।

इस तरह से कहानी चली साँस की,
जन्म मिलते रहे, मौत छलती रही।

ज़िन्दगी की कड़ी धूप में हम मिले
प्राण में थी लगन, प्यास में थी तपन,
कुछ न बोले हमारे - तुम्हारे अधर
कह गये बात सारी नयन से नयन।

इस तरह तय हुआ प्यार का यह सफ़र,
तृप्ति मिलती रही, प्यास बढ़ती रही।

कौन जाने विरह की व्यथा की कथा
और कितना दुखद दो घड़ी का मिलन,
भाव उमड़े सघन, झर गये अश्रु बन
रह गई शेष फिर भी हृदय में घुटन।

इस तरह से कटे ज़िन्दगी के पहर,
गीत झरते रहे, पीर बढ़ती रही।

कौन बाधा न थी जो खड़ी राह में
शूल कितने गड़े रोकने को चरण,
प्राण, मानो न मानो तुम्हारे लिए
प्रीत के नाम पर कर दिया सब हवन।

इस तरह से कटी प्रीत की यह डगर,
शूल चुभते रहे, राह चलती रही।

जो ख़ुशी भी मिली वह अधूरी मिली
दीप कितने जले पर वही तम गहन,
रात के हाथ मेंहदी लगी ही रही
माँग भरने न आई सुबह की किरण

इस तरह से कटी आज तक यह उमर,
साँस चुकतीं रहीं, प्रीत बढ़ती रही।

स्वप्न कितने रचे थे मिलन की घड़ी
नव-वधू सा उमंगों भरा मन-भवन,
पर किसी की नज़र कुछ लगी इस तरह,
रह गया अधखिला ज़िन्दगी का चमन।

इस तरह तय हुआ ज़िन्दगी का सफ़र,
स्वप्न मिटते रहते, उम्र ढलती रही।

इस तरह से कटा रात का हर पहर,
दीप जलता रहा, लौ मचलती रही।

# देर हो जाये तो

तुमने मुझे बुलाया है, मैं आऊँगा
बन्द न करना द्वार, देर हो जाये तो

साँझ पहर जब चरवाहे घर आयेंगे
लहरों के संग माँझी गाते आयेंगे
तब भी तुम मत अपना जी भर भर लाना
पंथ निहार निहार प्राण मत थक जाना
दिन ढलते ढलते मैं भी आ जाऊँगा
बन्द न करना द्वार साँझ हो जाये तो

कभी किसी छाया से भ्रम भी हो जाये
और चित्र वह अगले पल, ही खो जाये
तब भी तुम मत अपना मन भारी करना
मत निराश होकर आँचल गीला करना
दिन छिपते छिपते मैं भी आ जाऊँगा
बन्द न करना द्वार, रात हो जाये तो

पदचापों की ध्वनि मन में सुनती होगी
आहट पर देहरी पर भी आती होगी
बहुत चल चुका बस अब थोड़ी दूरी है
पथ में रूकना भी अक्सर मजबूरी है
दीपक बुझते बुझते मैं आ जाऊँगा
बन्द न करना द्वार, भोर हो जाये तो

# बीत गये इतने दिन

बीत गये इतने दिन फिर भी
याद बहुत आती है।

जब भी याद तुम्हारी मन की साँकल खटकाती है
सुधियों के नयनों से बरबस नींद उचट जाती है
उर की पीर कसक उठती है पुरवैय्या में जैसे
सावन की पहली फुहार से धरा महक जाती है
बीत गये इतने दिन फिर भी
याद बहुत आती है

मेरी क़िस्मत रोज़ नियति के हाथ छली जाती है
आती है हर ख़ुशी द्वारा तक किन्तु लौट जाती है
जाने कितनी बार सँवारा मन का कोना कोना
मन-आँगन में घिरी उदासी तनिक न घट पाती है
बीत गये इतने दिन फिर भी
याद बहुत आती है

दिन को ढोते-ढोते पथ में संध्या आ जाती है
संध्या भी कुछ पता तुम्हारा नही बता पाती है
नीरवता से प्रश्न न जाने मन कितने करता है
प्राण तुम्हारी राह देखते रात गुज़र जाती है
बीत गये इतने दिन फिर भी
याद बहुत आती है

# लौटा दो वह जीवन

शेष समय भी कट जायेगा, शेष राह भी कट जाये
हो सके प्राण तो लौटा दो वह जीवन।

मैं हूँ मरघट की धूल कि जिस पर यौवन के अरमान जले हैं
मैं हूँ पतझर की धूल कि जिसमें कलियों के अरमान मिले हैं
मैं हूँ पथ की धूल कि जिसका कोई भी सम्मान नहीं है
मैं हूँ देहरी की धूल कि जिस पर किसी नयन के अश्रु ढले हैं
पर मैं सब दिन धूल नहीं रह सकता
तुम छू भर दो, मैं बन जाऊँगा चन्दन
हो सके प्राण तो लौटा दो वह जीवन।

मैं हूँ पत्थर-सा मौन किन्तु पत्थर सा ही निष्प्राण नहीं हूँ
मैं हूँ आँसू-सा मौन किन्तु आँसू-सा ही अनजान नहीं हूँ
मैं दीपशिखा-सा मौन किन्तु झंझा से भी लड़ने का प्रण हूँ
मैं समाधि-सा मौन किन्तु मैं जीवन का अवसान नहीं हूँ
गूँज उठेंगे धरती नभ मेरे ही स्वर से
तुम भर दो प्राणों में ऐसा स्पंदन
हो सके प्राण तो लौटा दो वह जीवन।

मैं हूँ पत्थर साकार देख जिसको मधुमास सिहर उठता है
मैं हूँ विस्तृत मरुदेश कि जो मधुवन की ओर सदा चलता है
मैं हूँ ऐसी कथा व्यथा की जिसका केवल मैं ही नायक
मैं हूँ ऐसी रात कि जिसका कोई छोर नहीं मिलता है

पर मैं सब दिन वीरान नहीं रह सकता
तुम आ जाओ मैं बन जाऊँगा नन्दन
हो सके प्राण तो लौटा दो वह जीवन।

मेरी सुख की भोर न जाने कैसे दुख की सांझ हो गई
मेरी जीत न जाने कैसे दो पल में ही हार हो गई
इससे बढ़कर क्रूर व्यंग्य क्या कर सकती थी क़िस्मत मुझसे
मैं था पथ में, मंज़िल मुझ से सदा सदा को दूर हो गई

पर मैं सब दिन अभिशाप नहीं रह सकता
तुम लौटा दो मेरे बीते जीवन क्षण
हो सके प्राण तो लौटा दो वह जीवन।

# एक आशा

यहीं कहीं से गई प्राण तुम
यहीं कहीं से आ जाओ
राह अधूरी कट जाये
मैं बिन नाविक की नौका हूँ मझधार बीच
तुम बन आओ पतवार किनारा मिल जाये
राह अधूरी कट जाये
असमय गहन लगा पूनम के चंदा को
असमय रात अमावस की घिर आई है
सपनों की बारात सुखों के आँगन से
बिन डोली के क़िस्मत ने लौटाई है

रुकते चलते पथ तो कट जाये लेकिन
तुम कुछ दे दो साथ सहारा मिल जाये
राह अधूरी कट जाये

ऐसी नज़र लगी मधुमय फुलवारी को
जब आता मधुमास, उतर आया पतझर
कलियाँ बुनती रहीं स्वप्न अरमानों के
ऐसी चली हवा, पल में सब गया बिखर
मन-माली कहता है यह उजड़ी बगिया
तुम बन आओ धूप दुबारा खिल जाये
राह अधूरी कट जाये

चलने को तो बिन साथी चल लूँगा पर
लगता है जैसे कोई प्रायश्चित है
अगणित दीप जलाऊँ सुधियों के लेकिन
इन रातों का नहीं सवेरा निश्चित है

अंधियारों में भी लेकिन मन कहता है
तुम बन आओ किरण सवेरा हो जाये
राह अधूरी कट जाये
यहीं कहीं से गई प्राण तुम यहीं कहीं से आ जाओ

# खोल दो पर एक अन्तर्द्वार

बंद कर लो तुम भले ही द्वार सारे
खोल दो पर एक अन्तर्द्वार

पंथ है अनजान, मंज़िल है अजानी
एक तारा भी न नभ में टिमटिमाता
देखता है अब न कोई बाट मेरी
गीत भी कोई न मेरे गुनगुनाता

किन्तु फिर भी चल रहा हूँ
पंथ का मन रख रहा हूँ
चाह कुछ यश की नहीं है
भय पराजय का नहीं है
जीत भी स्वीकार मुझको, हार भी स्वीकार,
माँगता कुछ भी नहीं मैं, खोल दो बस एक अन्तर्द्वार।

प्रीत-नौका लहर का संगीत सुनती
नील नभ की छाँव नीचे तिर रही थी
प्राण-वीणा साँस तारों पर प्रणय के
नित अनूठा गीत कोई रच रही थी

किन्तु अब वह नाव जर्जर
रह गये सब स्वर बिखर कर
चाह अब तट की नहीं है
भय भँवर का भी नहीं है
कूल भी स्वीकार है, मझधार भी स्वीकार
चाहता कुछ भी नहीं मैं, खोल दो बस एक अन्तर्द्वार।

प्राण तुम बिन शेष जीवन यातना है
हर ख़ुशी लगती मुझे अभिशाप सी है
साँस का भी है हृदय पर बोझ भारी
हर घड़ी अब एक पश्चाताप सी है

शाप सा सब सह रहा हूँ
बिन दिशा के चल रहा हूँ
चाह है सुख की न मुझको
दुख न लगता भार मुझको
भोर भी स्वीकार मुझको साँझ भी स्वीकार
माँगता कुछ भी नहीं मैं, खोल दो बस एक अन्तर्द्वार।

हर सुबह की शाम होती है यहाँ पर
हर कली को धूल में मिलना बदा है
हर जनम की सेज है अन्तिम चिता ही
हर चिता से ही जनम होता सदा है

खेल विधि का चल रहा है
काल पल पल छल रहा है
चाह जीवन की नहीं है
मृत्यु का भी भय नहीं है
मरण भी स्वीकार मुझको, सृजन भी स्वीकार
चाहता कुछ भी नहीं मैं, खोल दो बस एक अन्तर्द्वार।

# जो तुम्हें मैं भूल जाऊँ

कौन सा वह गीत गाऊँ
जो तुम्हें मैं भूल जाऊँ

याद आती है कि लगता
तुम स्वयं ही आ गई हो
इस अमावस की निशा में
चाँदनी-सी छा गई हो
फिर वही गहरा अन्धेरा
दूर तक दिखता न कोई
हास सी आकर अधर पर
अश्रु बनकर बह गई हो
भार सा हर दिवस ढोना तो नियति है
किन्तु रूठी रात को कैसे मनाऊँ
कौन सा वह गीत गाऊँ जो तुम्हें मैं भूल जाऊँ

देखता हूँ इस भवन का
भीड़ से आँगन भरा है
और जैसे हर हृदय में
नेह का निर्भर झरा है
यूँ बहुत श्रृंगार आभूषण
जुटाये हैं सभी ने
एक तुम बिन प्राण मुझको
किन्तु यह सूनी धरा है
साथ सबके हंस रहा हूँ किन्तु बरबस
छलक आये अश्रु को कैसे छिपाऊँ
कौन सा वह गीत गाऊँ जो तुम्हें मैं भूल जाऊँ

# कानपुर के नाम

कानपुर, तूने बुलाया था बहुत बार मुझे,
कानपुर, आज तेरे द्वार पै ख़ुद आया हूँ।
जिसको डोली में बिठा कर के दिया था तूने,
उसके अरमानों की मैं राख लिये आया हूँ।

तेरी गलियों में मेरे प्यार ने चलना सीखा,
तेरे आँगन में मेरे प्यार का यौवन बीता।
तेरी गंगा के किनारे मेरे आदर्शों ने,
कितनी ही बार लिखी प्यार की पावन गीता।

तेरी हर सुबह जो सोने में ढली होती थी,
रोज़ जीवन को नया रंग दिया करती थी।
औ' तेरी शाम मिलन-पर्व मनाकर हर रोज़,
प्रीत की माँग में सिंदूर भरा करती थी।

तेरे बाग़ों में मेरा प्यार महक उठता था,
चाह थी प्यार का आँचल गुलों से भर जाये।
तेरे घाटों में मेरे प्यार ने जाकर अक्सर,
अपनी मासूम तमन्ना के दिये तैराये।

तपेश्वरी का वह मंदिर कि जिसके आँगन में,
किसी अरमान भरे दिल ने दुआ माँगी थी।
है खड़ा आज भी बरगद कि जिसकी छाँव तले,
किसी ने अपने महावर की उमर माँगी थी।

घर के आँगन को वो रह रह के याद आती है,
काँपते हाथों से जयमाल जो पहनाई थी।
किसी ने मेंहदी लगे हाथ मेरे हाथ में रख,
उम्र भर साथ निभाने की क़सम खाई थी।

तेरी रातों में जो रंगीन सपन देखे थे,
अब न उन सपनों को है कोई सजाने वाला।
चाँदनी रातों में जो गीत लिखे थे मैंने,
अब नहीं है कोई उन गीतों को गाने वाला।

अब न वह दिन हैं, न वह ख़्वाब, न अरमान रहे,
हमसफ़र कोई नहीं, फिर भी सफ़र करना है।
एक धुँधली-सी किरण तक का सहारा भी नहीं,
ज़िंदगी तेरे लिए फिर भी बहुत चलना है।

कानपुर, तेरे तो एहसान बहुत हैं मुझ पर,
यह अलग बात है तक़दीर साथ दे न सकी।
क़सूर क्या था मेरा, यह सज़ा मिली क्यों कर,
न आस्माँ ही बताता, ज़मीं बता न सकी।

तूने जो कुछ भी दिया था मेरी मुहब्बत को,
मैं तुझे आज वही सौंप के सब जाता हूँ।
और इस टूटे हुए दिल के सहारे के लिए,
एक वीरान-सी तनहाई लिये जाता हूँ।

तू तो मसरूफ़ बहुत है मगर यह मुमकिन है,
ज़िक्र मेरा तेरी महफ़िल में कभी आ जाये।
चंद आँसू मेरी क़िस्मत पै गिरा देना बस,
तुझको मेरी भी कभी याद अगर आ जाये।

सफ़र हो ख़त्म कहाँ, कब यह लौ बुझे लेकिन,
आख़िरी वक़्त तेरी याद में खो जाऊँगा।
नसीब ख़ाक कहाँ की हो, क्या पता, लेकिन,
मैं यक़ीनन तेरे आग़ोश में आ जाऊँगा।

कानपुर, तूने बुलाया था बहुत बार मुझे,
कानपुर, आज तेरे द्वार पै ख़ुद आया हूँ।
जिसको डोली में बिठा सजा करके दिया था तूने,
उसके अरमानों की मैं राख लिये आया हूँ।

# याद बहुत आती है

यूँ तो भारी मन से मैं हर दिन को ढो लेता हूँ
कभी कभी पर प्राण तुम्हारी याद बहुत आती है
मन का पंछी रोज़ भोर को
नभ में उड़ जाता है
स्मृति की गलियों में
जाने कहाँ भटक जाता है

अर्न्तमन की जलन, धूप की तपन कठिन बाहर की

उजड़े हुये नीड़ पर थक कर
हार उतर आता है
मन देहरी पर संध्या कोई
दीप जला जाती है
या बरबस ही मन में
कोई पीर जगा जाती है

पीड़ा का मन बहलाने में रात गुज़र जाती है
कभी कभी तो प्राण तुम्हारी याद बहुत आती है

× × × × × ×

छोटी सी बगिया में पतझर
क्यों आया बेमौसम
ख़ुशियाँ क्यों रोती हैं
क्यों अरमान मनाते मातम

राजतिलक होते होते क्यों स्वप्न हुए वनवासी

वीणा कैसे मौन हो गई
बिखर गई क्यों सरगम
साँसें इन व्याकुल प्रश्नों को
हर क्षण दुहराती है

मन समझाने वाला उत्तर किन्तु नहीं पाती हैं
प्रश्नों में ही जाने कैसे रात गुज़र जाती है

कभी-कभी तो प्राण तुम्हारी याद बहुत आती है

# तुम्हारा ध्यान आया

आज फिर रह रह तुम्हारा ध्यान आया
आज फिर रह रह तुम्हारी याद आई

दिन भिखारी-सा भटकता घूमता है
शाम को पर लौटता है हाथ ख़ाली
कट न पाती, घट न पाती है तनिक भी
यह अमावस-सी व्यथा की रात काली
सब दिशायें मौन, नीरवता मुखर है
मौन थी धरती, गगन भी कुछ न बोला
शेष जीवन मीत बिन चलना बटोही
रात ने यह भोर से कहकर विदा ली
भार ढो लेता हृदय दिन का विवश पर
कौन जाने रात कैसे नींद आई

आज फिर रह रह तुम्हारा ध्यान आया
आज फिर रह रह तुम्हारी याद आई

दर्द मेरे बोल क्या तू जानता है
घाव ऐसा जो समय भरता नहीं है
या कि कोई पीर है ऐसी धरा पर
आदमी जिसको विवश सहता नहीं है
भाग्य रूठे प्रीत टूटे, मीत छूटे
या तिमिर ऐसा न मंजिल दे दिखाई
पर किसी पावन-शपथ का दीप लेकर

कौन राही है कि जो चलता नहीं है
मन-विहग का यूँ गगन से है बहुत रिश्ता पुराना
किन्तु उसकी हो चुकी है अब धरा से ही सगाई
आज फिर रह रह तुम्हारा ध्यान आया
आज फिर रह रह तुम्हारी याद आई

यह अनोखी हाट, यह बाज़ार कैसा
ज़िन्दगी दूकान पर रक्खी सजाई
अर्नागनत ग्राहक यहाँ आये जिन्होंने
मोल करने में उमर अपनी गवाँई
थी किसी के पास अनुभव की अशर्फ़ी
था किसी के पास सपनों का ख़ज़ाना
वक़्त - साहूकार ने लेकर सभी से
बिन दिये कुछ छीन ली सारी कमाई
और इस बाज़ार का कर्ज़ा चुकाने
आसुओं से ख़ुशी की क़ीमत चुकाई
आज फिर रह रह तुम्हारा ध्यान आया
आज फिर रह रह तुम्हारी याद आया

# आ गया हूँ मैं तुम्हारे देश

आज फिर भूला हुआ भटका हुआ सा
आ गया हूँ मैं तुम्हारे देश
जानता हूँ तुम नहीं हो साथ मेरे
हर पहर लगता कि जैसे साथ हो तुम
गीत कोई भी रचूँ या गुनगुनाऊँ
गीत के हर छंद का आधार हो तुम
मौन है धरती, गगन भी कुछ न कहता
सब दिशाएँ मौन हैं लेकिन हवाएँ
मौन स्वर में दे रही संदेश
आ गया हूँ मैं तुम्हारे देश

ज़िन्दगी बन्धक समय के घर कभी की
स्वप्न-धन लेकर बहुत आये यहाँ पर
मूल भी कोई चुका पाया न अब तक
ब्याज ही देते रहे हैं सब निरन्तर
जी रहा हूँ क्योंकि जीना विवशता है
कुछ प्रतिज्ञायें अभी भी हैं अधूरी
कर्ज़ साँसों का अभी है शेष
आ गया हूँ मैं तुम्हारे देश

मीत हो तो ज़िन्दगी है छाँव शीतल
मीत बिन यह जिन्दगी मरु की तपन है
तुम नहीं तो साँस समिधा सी सुलगती
तुम नहीं तो शेष यह जीवन हवन है

तुम कहाँ हो क्या पता पर चल रहा हूँ
क्या पता किस मोड़ पर फिर से मिलन हो
कौन जाने पंथ कितना शेष
आ गया हूँ मैं तुम्हारे देश

# सोचता हूँ

तोड़ लूँ सम्बंध, नाते और रिश्ते
पर कमी मेरी यहाँ किसको खलेगी
बात मन की मान कर ले लूँ शपथ भी
सोचता हूँ पर शपथ कब तक चलेगी

एक तो हम भाग्य के सम्मुख विवश हैं
दूसरे फिर आदमी दुर्बल बहुत है
तृप्ति का सागर क्षणिक मिल जाय लेकिन
प्यास का विस्तार तो फिर भी बहुत है
प्यास ही से चल रहे हैं सब यहाँ पर
सोचता हूँ तृप्ति यह कब तक रहेगी

ज़िन्दगी यूँ तो दिया तूने बहुत कुछ
किन्तु मेरा भी बहुत एहसान तुझ पर
साँस ढोई है अमावस के क्षणों में
हर व्यथा को राह का दीपक बनाकर
पथ बहुत है शेष लेकिन सोचता हूँ
यह व्यथा भी साथ कितने दिन चलेगी

राज भवनों का नहीं कोई पता अब
था जहाँ जीवन कभी हर पल थिरकता
एक दीपक तक नहीं जलता जहाँ पर
था कभी नित रूप रस यौवन छलकता
काल के आगे न कुछ भी टिक सका जब
एक मेरी मोम की बाती भला कब तक जलेगी

आज मैं हूँ है सकल संसार मेरा
कल न मैं हूँगा, न मेरी याद होगी
आज मुझसे ही सजी जो महफ़िलें हैं
कल यूँ ही मेरे बिना आबाद होंगी
खो गई हैं वक़्त में अगणित कथायें
सोचता हूँ एक मेरी ही कथा कब तक चलेगी

जन्म से पहले, मरण के बाद क्या है
कुछ नहीं है, सिर्फ़ है सुनसान सारा
तृप्ति भी है सत्य, तृष्णा भी चिरन्तन
बस इसी के बीच है संसार सारा
तृप्ति-तृष्णा की कथा है चिर सनातन
एक बस यह ही कथा युग युग चलेगी

बात मन की मान कर ले लूँ शपथ भी
सोचता हूँ पर शपथ कब तक चलेगी।

# जीवन संध्या का गीत

कुछ दिन बीते हंसते गाते
कुछ औरों का मन बहलाते
जीवन पथ में जो शूल चुभे
कुछ बीते उनको सहलाते
अब जीवन संध्या में बैठा
यादों से मन बहलाता हूँ
सुधियों के दीप जलाता हूँ
जीवन की बीती घड़ियों की
मैं बात करूँ भी तो किससे
अब बात करूँ भी तो किससे

किस किस को स्नेह दुलार दिया
या किस किस का उपकार किया
किस किस के बुझते दीपक में
नव आशा का संचार किया
अब समय मुझे समझाता है
वह सब तो एक बहाना था
मुझको ही कर्ज़ चुकाना था
किस किस का कर्ज़ चुकाया है
यह बात कहूँ भी तो किस से
अब बात करूँ भी तो किस से

यह जीवन तो रामायण है
कुछ रोदन है कुछ गायन है
कुछ धरती की दुर्बलतायें
कुछ देवों सा तप-साधन है
जीना भी एक विवशता है
मुझको भी हर पल चलना था
मन पर पीड़ा का बोझ लिये
सूने पथ का मन रखना था
पथ के उत्थान पतन की मैं अब बात करूँ भी तो किससे

सब संगी साथी छूट गये
सब नाते रिश्ते टूट गये
समझा था मन का मीत जिन्हें
सब समय देखकर रूठ गये
अब एकाकीपन साथी है
जग पर कोई विश्वास नहीं
अपनी भी छाया पास नहीं
रिश्तों के कच्चे धागों की
मैं बात करूँ भी तो किससे, अब बात करूँ भी तो किससे

सब में कुछ दोष हुआ करते
कोई निर्दोष नहीं होता
दुर्बलता मन भटकाती है
जीवन है पग पग समझौता
अब बैठ समय-सरिता-तट पर
एकाकी पन को साथ लिये
मैं सोच रहा क्या क्या छूटा
संघर्षों में कितना टूटा
अब अपने मन की पीड़ा की
मैं बात करूँ भी तो किससे, अब बात करूँ भी तो किससे

जीवन तो तृष्णा का सागर
अपनी अपनी सब की गागर
जीवन पनघट से लौटे ले
कुछ आधी कुछ रीती गागर
मैं तृप्ति भरा पूरा घट हूँ
मन में अब कोई चाह नहीं
यश अपयश की परवाह नहीं
अब विदा घड़ी आने को है
तब करूँ शिकायत भी किससे, अब बात करूँ भी तो किससे

अनुभव की कक्षा में चाहा
अध्ययन करना जीवन दर्शन
लेकिन जितना गहरे पैठा
उतना ही उलझ गया जीवन
बीता जीवन सुलझाने में
बस सार सत्य यह हाथ लगा
जीने की रस्म निभाना है
ख़ुद को खोकर कुछ पाना है
कितना खोया, कितना पाया, यह बात कहूँ भी तो किससे

# इन गीतों में मेरा जीवन

इसमें सोया मेरा बचपन,
इनमें रोया मेरा यौवन,
इनमें मेरा उत्थान-पतन,
इन गीतों में मेरा जीवन।

कुछ ऐसे भी क्षण आये हैं जब मैं जीवन से ऊब उठा,
निज की असफलता से न थका जग के हँसने पर खीज उठा।
पनघट से मरघट जाने की जब जब भी की है तैयारी,
वह क्षण है जब मेरा अपने ऊपर से ही विश्वास उठा।
फिर भी मैं सोचा करता हूँ,
मेरे जीने का क्या कारण,
यह हैं मेरे चिन्तन के क्षण,
यह मेरे संघर्षों के क्षण।
इन गीतों में मेरा जीवन।

कुछ ऐसे भी क्षण आये हैं जब मैं ख़ुशियों में डूब गया,
जगती का सुख, जगती का दुख, सब मेरे सुख में डूब गया।
अम्बर से स्वर्ग उतर आया है इस धरती पर उस उस क्षण,
जब जब प्रिय की पग-पायल-ध्वनि से मेरा आँगन गूँज गया।
जब जब चाहा मैं मौन रहूँ,
तब तब गा उठता मेरा मन।
यह हैं मेरे हँसने के क्षण,
इनमें है मेरा पागलपन।
इन गीतों में मेरा जीवन।

कुछ ऐसे भी क्षण आये हैं जब मैं सुख-दुख के बीच पला,
दुख के बन्धन में रह न सका, सुख की सीमा पर छू न सका।
आभास हुआ मंजिल आई फिर छाया विस्तृत सूनापन,
उस काल गिरी बिजली जिस क्षण सोचा उतरेगी स्वर्ण किरण!

फिर भी चलता ही जाता हूँ,
रखने को सूने पथ का मन।
यह हैं मेरे चलने के क्षण,
यह हैं मेरे रुकने के क्षण।
इन गीतों में मेरा जीवन।

मैं भी तुम-सा ही मानव हूँ मुझमें तुम-सी अभिलाषाएँ,
मुझमें तुम-से अरमान भरे मुझमें तुम-सी दुर्बलताएँ।
मुझमें धरती की कमज़ोरी, मुझमें देवों का तप-साधन,
मुझमें जगती के पाप उदय, मुझमें गंगा का जल पावन।

मुझको यह पुण्य बहुत प्यारे,
मुझको यह पाप बहुत पावन।
यह हैं मेरे उठने के क्षण,
यह हैं मेरे गिरने के क्षण।
इन गीतों में मेरा जीवन।

यदि कोई तुमको प्यारा हो जिसने तुम पर सब वारा हो,
उसके सहसा मिल जाने पर फिर कौन नहीं गा उठता है?
उसके सहसा छुट जाने पद फिर कौन नहीं रो पड़ता है?
मेरे रोदन गायन पर जग नाहक ही विस्मय करता है।

इनमें न कहीं जीवन-दर्शन,
इनमें न कहीं जग का क्रन्दन।
यह हैं मेरे गाने के क्षण,
यह हैं मेरे रोने के क्षण।
इन गीतों में मेरा जीवन।

# जीवन से

मधुरे, तुम अतिशय सुन्दर
तुम चिर नवीन
नित नवल रूप धर
नव श्रृंगार कर
देवलोक से
दिव्य ज्योति की प्रथम किरण बन
आ जाती हो जगती-तल पर।

× × ×

किन्तु
कब हुआ हमारा प्रथम मिलन?
कुछ नहीं याद!
कैसे ऐसे संयोग हुआ?
कुछ नहीं ज्ञात!
तुम विस्मृत कर बैठी सब कुछ
पर मुझे याद।
यह है रहस्य,
रहने दो मुझ तक ही सीमित।
यह गुप्त भेद,
रहने दो मुझमें ही गोपन।
कब हुआ हमारा प्रथम मिलन?

× × ×

यद्यपि हम दोनों चिर परिचित
हम दोनों में निस्सीम स्नेह
बन्धन अटूट,
श्रद्धा अगाध,
अनुरक्ति भाव-
आसक्ति पूर्ण
फिर भी हममें होगा वियोग।
होगा वियोग हममें निश्चित।
यद्यपि हम दोनों चिर परिचित।

× × ×

मधुरे,
वर्षों हम रहे साथ,
आये अनेक सुख-दुख के क्षण,
उत्ताल तरंगों पर तिरता जीवन है बस उत्थान-पतन।
कभी चमकती चपला चंचल,
कभी हुआ अम्बर में गर्जन,
कभी व्योम के रजत-हास से सस्मित हो उठते सिकता-कण।
जीवन तेरी यही मधुरिमा
इसमें ही है तेरी गरिमा
इसमें ही तेरा आकर्षण

× × ×

किन्तु तुम खिन्नमना उन्मना आज
संगिनि, बोलो क्यों हो उदास?
किस कारण यों तज रहीं साथ?
जीवन के अन्तिम क्षण में।
यदि यही तुम्हारी अभिलाषा तो जाओ
मैं नहीं विवश करता तुमको
मैं नहीं बाँधता जीवन-बन्धन में तुमको।

तुम हो विमुक्त, तुम हो स्वच्छंद
तुम हो स्वतंत्र, तुम हो विहंग-सी
विचरो जाकर नील गगन में।
पर देखो इतना करना
जब मैं अपनी खोई निधियाँ पा जाऊँ
या अतीत के सुख-सपनों में खो जाऊँ
तब धीरे से मुझे जगा कर
चुपके से
पदचापहीन गति से जाना
अन्तिम बार ''विदा'' मत कहना
कहना ''प्रियतम पुनः मिलेंगे!''

# मुझे न तुम पहचान सकोगे

जग में सुना, "न पथ में रूकना, राही की पहचान यही है,
पग पग पर संघर्ष मिले, तो जीवन का सम्मान यही है।"
पर इन भावों से भी ऊपर है मेरे धीरज की सीमा—
रोदन के क्षण में भी मेरे अधरों पर मुस्कान रही है;
सम्भव है मेरे सुकुमार हृदय को तुम पाषाण कहोगे,
मुझे न तुम पहचान सकोगे।

क्या जानो तुम बना बना कर मैंने कितने स्वप्न मिटाये,
मेरे जीवन-उपवन में कितने अधखिले कुसुम मुर्झाये,
अरमानों की दुनिया से बस मेरा इतना ही परिचय है—
कुछ छाले से टूट गये हैं या कुछ आँसू बनकर आये।
इन गीतों से मेरे उर की पीड़ा क्या तुम जान सकोगे?
मुझे न तुम पहचान सकोगे।

सुनता था पथ की बाधाएँ होती हैं संकेत विजय का,
लेकिन विधि ने उनके हाथों ही भेजा संदेश प्रलय का।
अन्तर में कोई कहता है, "राही पथ को छोड़ न देना"
यों कुछ भी आभास न मिलता मुझको अपने भाग्योदय का
पर तुम विजय-पराजय के क्षण की कैसे पहचान करोगे?
मुझे न तुम पहचान सकोगे।

सोच नहीं है मुझको अपने जीवन की असफलताओं का,
जो उगते ही अस्त हो गईं सोच नहीं है है उन चाहों का।
क्योंकि मुझे उस एक दीप का है विश्वास बचाना अब भी
जिसने मेरे हित जल जल कर सृजन किया था अरमानों का।
मुझे शपथ उन अरमानों की जिन्हें कभी तुम पा न सकोगे,
मुझे न तुम पहचान स कोगे।

# कैसे कह दूँ मैं नया वर्ष आया

कैसे कह दूँ मैं नया वर्ष आया ?
कैसे कह दूँ यह नव संदेश लाया ?

जीवन-सरिता बह रही आज
धीरे धीरे
धीमे धीमे
विश्रांत चरण
व्याकुल उन्मन
अति मंद मंद
अति उदासीन
या पथ विहीन
जीवन-सरिता बह रही आज।
न कोई शिला रोकती राह
किनारों से ऐसा क्या मोह
नहीं बहती जो उनको छोड़।

× × ×

न जग की तिथियों से केवल
बदल सकते जीवन के क्षण
न केवल किसी एक दिन से
वर्ष हो सकता है नूतन
वर्ष भी दिवस महीनों का
नहीं केवल क्रममय बन्धन

वर्ष जीवन का एक नियम
एक स्थिति से ऊबा मन।

× × ×

जब हो जीवन में नव उमंग
जब हो जीवन में नव तरंग
जब हो जीवन में नवल हर्ष
जब हो जीवन में नवोत्कर्ष
जब प्राणों की साँस साँस से
फूटा पड़ता हो उल्लास
जब जीवन-उपवन की हर
डाली पर छा जाये मधुमास
तब एक वर्ष बदला करता

उस दिन होती है नई रात,
उस दिन होता है नया प्रात,
हर क्षण होता है स्नेह-स्नात,
हर क्षण में होती नई बात।

कैसे कह दूँ मैं नया वर्ष आया?
कैसे कह दूँ यह नव संदेश लाया?

# परिणय का आधार

सृष्टि के प्रथम चरण की बात, मनाया गया सृजन-त्योहार
दिया फिर कण-कण को वरदान, मनुज उस वर का ही सत्कार,
प्रतिष्ठित हुए सभी में प्राण, सँजोये गये भाव सुकुमार।
नियत फिर हुए सभी के भाग्य, बनीं सबकी रूंचियाँ व्यवहार,
तभी विधि को सूझा परिहास, मिलाया फिर सबको इक बार।
किन्तु माटी तब उठी कराह, विधाता तो थे करूणागार,
सृष्टि रचने के सद्उददेश्य दिया मिट्टी को मनुजाकार।
मूल में किन्तु पड़ गई भूल इसी से जग में हाहाकार,
अधूरा-सा अपने को देख सभी कर उठे करूण चित्कार।

× × ×

किसी में पड़े किसी के प्राण, किसी में ध्वनित किसी का गीत,
किसी में उगे किसी के भाव, किसी में जगी किसी की प्रीत।
कहीं बिछुड़ी श्रद्धा से भक्ति, कहीं बिछुड़ा स्वर से संगीत,
कहीं पर जगा सुनहला प्रात, कहीं पर सोया सुखद अतीत।
कहीं पर चाँद चाँदनी कहीं, कहीं पर सुरभि, कहीं पर फूल,
तड़पती कहीं लहर बिन तीर, सिसकता कहीं लहर बिन कूल।

× × ×

भटकते कितने ही असहाय रह गये जीवन के उस पार,
ढूँढ़ते कितने मन का मीत आ गये जीवन के इस पार।
मिले कुछ जीवन-धारा बीच, हो उठे झंकृत उर के तार,
प्राण को प्राण गये पहचान, बुलाने लगा प्यार को प्यार।

प्रणय दो प्राणों का संगीत, एक है सरगम एक सितार,
प्रणय दो भावों की है प्रीत, एक है धरा एक रसधार।
प्रणय ही है जीवन का सार, प्रणय ही परिणय का श्रृंगार,
हमारे परिणय का था यही सुखद संयोग, यही आधार।

# कितनी दूर किनारा

कितनी दूर किनारा माँझी
कितनी दूर किनारा

स्वजन सनेही सुख के संगी
दुनियाँ की हर चाल दुरंगी
भीड़ भरे इस जग में मनुआ
कोई नहीं सहारा, कितनी दूर किनारा
माँझी कितनी दूर किनारा

नभ में बदरी घिरती जाती है
नदिया भी रह रह चढ़ती जाती है
रात अंधेरी, नाँव झाँझरी
तेज़ बह रही धारा, कितनी दूर किनारा
माँझी कितनी दूर किनारा

जीवन-बाती रह रह कँप जाती है
घड़ियाँ जीवन की चुकती जाती हैं
मुझको लगता दूर किसी ने
जैसे मुझे पुकारा कितनी दूर किनारा
माँझी कितनी दूर किनारा

# युगबोध

# कलाकार कनु की
# कला-कृतियों का भावानुवाद

ओ मयूर के पंख भले ही हो मयंक से
श्याम शीष चढ़ने पर मत हो इतना गर्वित
जब राधा रूठेंगी, कान्ह मनाते होंगे
तब तुम होगे उनके पद पंकज पर लुंठित

प्रेयसि के मधुरानन का करते-करते शृंगार
मन्द-मन्द मुस्काये माधव जब यह आया ध्यान
प्रिय के भाल गगन पर मैंने रचे असंख्यक चाँद
सब में मैं ही प्रतिबिम्बित, सब मुझसे ही छविमान

विरह अनल प्रज्वलित किया उच्छवासों ने
आहत हिरणी-सी घूम रही वह वन-वन में
प्यार जिसे राधा समझी सुन्दर सपना—
हाय वही अभिशाप बन गया जीवन में

चलो सखी इस प्रेम कुंज से होगा तुम्हें विषाद
आयेगी रह-रह कर तुमको विगत क्षणों की याद
कभी किया था इसी ठौर पर बैठ प्रणय-अभिसार
विकल करेगा पात-पात दुहरा कर वह संवाद

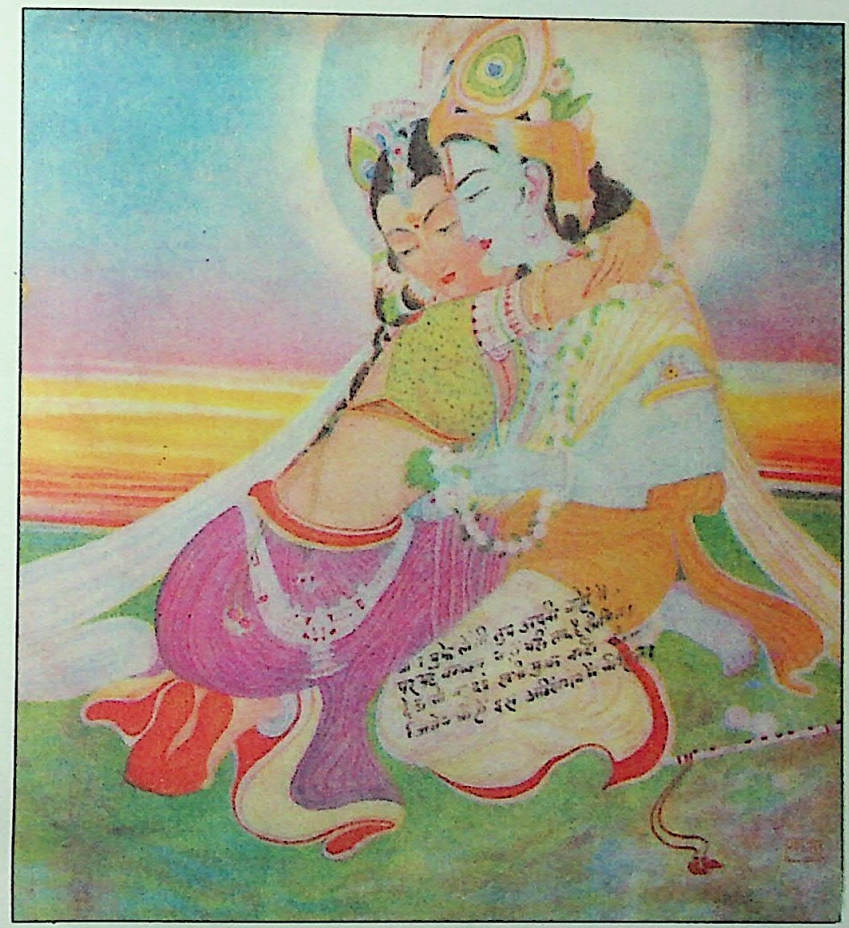

बाँध लिया तुमने मुझको निज बाहों में
पर यह बन्धन नहीं यहीं तक है सीमित
दे डालो वह दंड सभी मुझ बन्दी को
जितने भी हैं इस आलिंगन में निहित

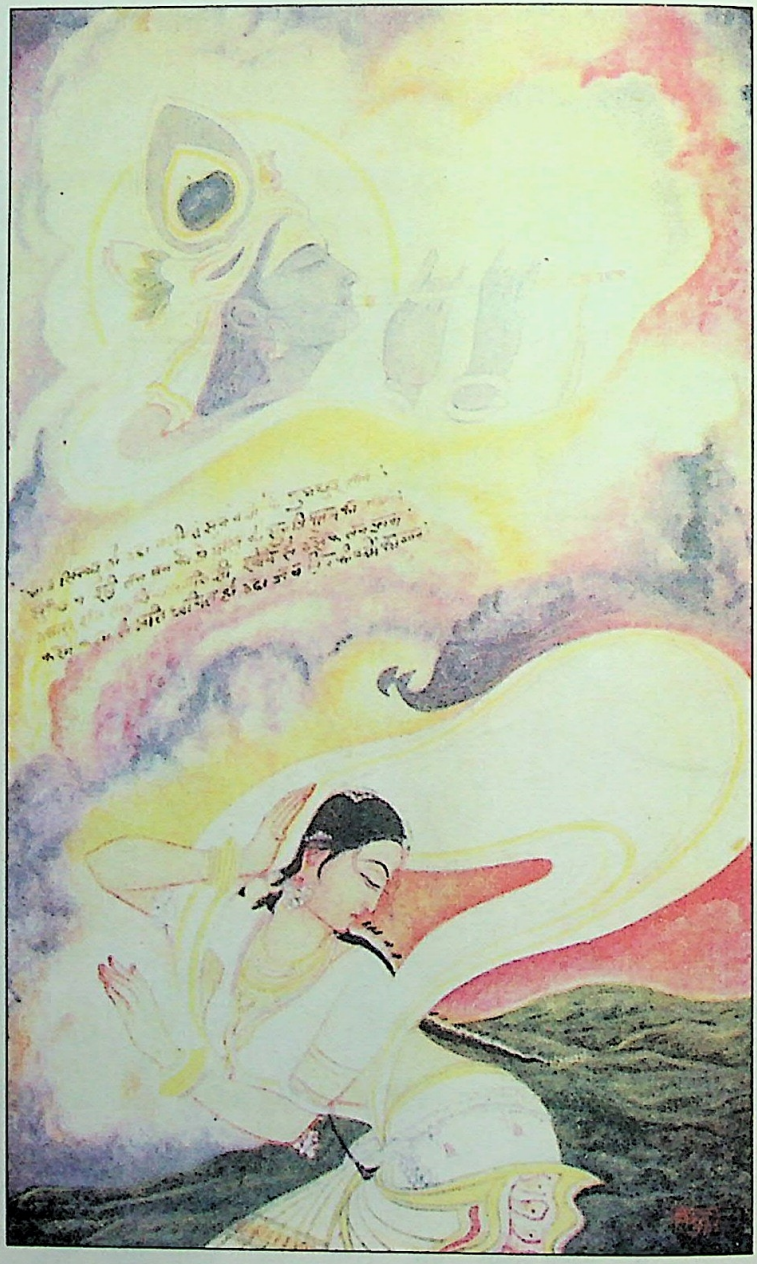

भाव सिन्धु हो उठा तरंगित सुन वंशी की सुमधुर तान
सुध न रही तन मन की प्रेयसि को सुन प्रियतम का आह्वान
आतुर रति सी, चंचल गति सी, खोये से उसके तन प्राण
कण कण में प्रतिध्वनित हो उठा जब प्रिय की वंशी का गान

# बरसो घन जी भर बरसो

सूखी डाली, झुलसे तरुवर,
सूखी कलियाँ, सब प्राण हीन।
सूखी सरिता प्रिय के वियोग में,
रेखा - सी रह गई क्षीण।

धरती की जर्जरता निहार,
जगती का हाहाकार उठा।
नभ के दृग बरबस बरस पड़े,
हिमगिरि का भी उर पिघल उठा।
बरसो घन जी भर बरसो
पुष्प वृष्टि हो,
अन्न वृष्टि हो,
नई सृष्टि हो।
गरज गरज कर कहो, ''न मानव तरसो''
बरसो घन इतना बरसो।

बरसों खेतों मैदानों में,
बरसो उन कोटि किसानों में।
जिनके तुम ही आराध्य देव—
हो, कोटि कोटि भगवानों में।

मिट्टी से फूटे नव अंकुर,
जन जन के जागें सुप्त प्राण।
मन में आशा उल्लास लिये,
हल बैल लिये चल दे किसान।

धुल जाय धरा का कलुष गात,
कलि-कुसुमों का यौवन निखरे,
धुल जाय डाल का पात पात,
पत्तों पर मोती से छहरें।

डाली को पुनः सिंगार मिले,
सरिता को बिछुड़ा मीत मिले।
पंछी को उसका नीड़ मिले,
जग जीवन को संगीत मिले।

कल कल कर सरिता बह निकले,
बह जाएँ दैन्य दुख तृण समान।
युग युग की प्यासी धरती को,
मिल जाय तृप्ति का अमर दान।

# विनोबा तुमको कोटि प्रणाम!

छिपाये उर में जग की पीर,
सम्भाले सजल नयन का भार।
युगों से मौन सिंधु में आज,
अचानक आया है यह ज्वार।

लजाते चले पवन का वेग,
झोंपड़ी में सुन हाहाकार।
कँपाते चले धरा का गात,
बचाने मानवता की हार।

विश्व के कोलाहल के बीच,
दधीची दानी भी दो चार।
देखकर जिनका हृदय विशाल,
दनजुता बेबस जाती हार।

चले तुम जिधर, चला विश्वास,
चली बापू की छाया साथ।
जिधर तुम गये झुके शत माथ,
जिधर तुम बढ़े, बढ़े शत हाथ।

तुम्हारे स्वागत में उठ प्रात
उषा ने कुंकम दिया बिखेर।
खिली कलियाँ पा अतिथि महान
कुसुम दल ने दी सुरभि बिखेर।

रात रानी ने कर श्रृंगार,
जलाई नभ में दीपक माल।
सँजोने को दी पग की धूल,
चाँद ने भू पर चादर डाल।

झुका अम्बर छूने भू छोर,
भूलकर निज गौरव सम्मान।
हिमालय को भी तुमको देख,
हुआ अपनी लघुता का ध्यान।

हुए हैं यों तो सन्त अनेक,
मनुजता के हैं जो श्रृंगार।
किन्तु तुम तो हो नींव समान,
भव्य जग-जीवन के आधार।

न करते जन्म-निधन पर सोच,
न देते गूढ़ धर्मोपदेश।
तुम्हारे गँवईपन में छिपा,
तुम्हारा सीधा-सा संदेश।

न माँगे मनुज दया की भीख,
न नभ की ओर निहारे हार।
सृष्टि के प्रथम चरण में मिला,
मनुज को जीने का अधिकार।

चलेगी कथा दीन के काज,
बने थे याचक भी भगवान।
उगा था सर्वोदय का सूर्य,
हुआ था नव समाज निर्माण।

विनोबा मेरा तुम्हें प्रणाम!
पुण्य चरणों में कोटि प्रणाम!!

# अछूतों की बस्ती

मंदिर से कुछ दूर सघन तरु की छाया में
एक अछूतों की बस्ती है।
किन्तु एक बस्ती में भी अगणित बस्ती हैं
बीमारों की बस्ती है,
जर्जर मानव की बस्ती है
शोषित पीड़ित की बस्ती है
मंदिर से कुछ दूर सघन तरु की छाया में
एक अछूतों की बस्ती है।

× × ×

यह हैं अछूत!
है अति निकृष्ट औ' मानवता से बहुत दूर!
क्योंकि नहीं आता इनको आडम्बर रचना
क्योंकि नहीं आता है इनको शोषण करना
और न आया इन्हें अभी इस युग का दर्शन
जग-जीवन से भी ऊपर है अपना जीवन!
इसीलिए यह हैं अछूत।

× × ×

लो साँझ हो चली
अम्बर में लुक-छिपकर तारे लगे झाँकने
धरती पर भी दीप जल उठे
मंदिर में हो रही आरती

शंख-झाँझ-खड़ताल बज उठे।
ऊँचे स्वर में एक पुजारी गाता देखो
पतित पावन सीता राम

× × ×

मंदिर से कुछ दूर खड़े हैं हाथ बाँध
कलुआ मेहतर
चैतू चमार
रमुआ धोबी
भीखा कुम्हार
जिनके कानों से टकराता स्वर बार बार
पतित पावन सीताराम
तब एक दीर्घ निश्वास छोड़
सूने नभ को बरबस निहार
सहसा वह भी दुहरा देते हैं
पतित पावन सीताराम

× × ×

मत समझो इसको भक्तिभाव
कुछ स्वर्गलोक का है न चाव
यह है मानवता की कराह
यह है पददलितों की कराह
यह दमन-चक्र में घुटी आह

× × ×

अरे पुजारी व्यर्थ हो गया तेरा सब पूजन आराधन
अगर न तू अब तक मानव में ही कर पाया प्रभु के दर्शन
अगर न मानवता ही तेरा धर्म हो सका
अगर न सबमें समता तेरा लक्ष्य हो सका
इंसानों की एक जाति है अगर न यह विश्वास बन सका
व्यर्थ गया सब पूजन-अर्चन

× × ×

त्रेता युग में सुना राम ने शबरी से बेरों को खाया
बुद्ध देव ने अपने युग में अंगुमालि को गले लगाया
इस युग में भी हमने देखा—
इन्द्रपुरी दिल्ली के सिंहासन को तजकर
बापू रहते थे भंगी बस्ती में जाकर।

× × ×

धर्म-जाति और पाप-पुण्य केवल पूँजीपतियों की माया
वर्ग नहीं बन सकते जब तक है सबकी मिट्टी की काया
निष्कलंक निष्कपट हृदय पर मानवता के
धर्म-जाति औ' पाप-पुण्य की जब पड़ जाती कलुषित छाया
तब कुंठित हो जाता है जन जन का विकास
तब बन्दी हो जाता है सबका मुक्त हास।

× × ×

अब तक मानव ने कितने ही रच डाले हैं वेद-पुराण,
और न जाने रच डाले हैं कितने ही इंजील क़ुरान।
कितने ही अवतारी आये बनकर धरती के भगवान्,
किन्तु आदमी बन न सका है अब तक भी सच्चा इंसान।
इसीलिए बस्ती न बस सकी अब तक इंसानों की।

× × ×

दो फूल खिले दो डाली पर
दोनों का ही है नील गगन
दोनों के ही कजरारे घन
दोनों विकसित होते समान
दोनों पुष्पित होते समान
दोनों ही झर जाते समान
क्या मरघट की राख बता सकती है तुमको?
किस मिट्टी में सोई है ब्राह्मण की काया?

किस मिट्टी में मिली अछूतों की है काया
या जीवन के प्रथम चरण में बतला सकते—
किस के माथे पर गोरोचन तिलक लगा है
या किसके माथे पर अमिट कलंक लगा है।

× × ×

इस अरुणोदय की बेला में
इस परिवर्तन की बेला में
यह बर्बरता चल न सकेगी
मानव मानव में दीवारें टिक न सकेंगी
यह है धरती पर कलंक
यह है मानवता पर कलंक
यह सबके माथे पर कलंक।

आज सभी कर लो प्रायश्चित उसके बदले,
जिसने भी सदियों पहले यह पाप किया था।
और करो प्रायश्चित उस क्षण के भी बदले,
जिसने हमें ग़ुलामी का अभिशाप दिया था।

एक अछूतों की बस्ती जब तक धरती पर,
रामराज्य का सपना सत्य न हो पाएगा।
द्वार बन्द है मंदिर के जब तक इनके हित,
तब तक ईश्वर कोरा पत्थर कहलाएगा।

# यह बापू का सबसे सुन्दर पूजन

सम्भव है विश्वास न होगा
तुमको मेरी इन बातों में
मैंने कितने ही गांधी-से
योगी देखे देहातों में

जिनके नंगे तन से दिल्ली
के तन पर रेशम है
जिन पर दो आँसू ढुलका देना
जग की एक रसम है

जिनके ठठरी से पंजर में
गांधी का विश्वास अमर है
जिनके बैलों की घंटी में
अगणित रामधुनों का स्वर है

अगर चाहते हो गांधी का
नाम अमर हो जाये
या मुट्ठी भर हड्डी का
बलिदान अमर हो जाये

तो छोड़ो शहरों का विलास
औ' छोड़ों शहरों का वैभव
जाओ भारत के ग्राम ग्राम
जो अभी धरा पर स्वर्गधाम
(हैं जहाँ अभी भी कृष्ण-राम)

राजघाट में क्या है? बस
बापू की केवल भस्म शेष है
पर भारत के ग्राम ग्राम में
बापू के पद-चिह्न शेष हैं

कंचन युग के बादल उन
पर कही न छाने पायें
भौतिक तम में बापू के
पद-चिह्न न मिटने पाये

यह बापू का सबसे सुंदर पूजन

# ग़ज़ल

दर्द कैसा भी हो सीने से लगाते रहिये
और जीने की यहाँ रस्म निभाते रहिये

रोशनी आ के अंधेरों में न खो जाय कहीं
एक दिया राह दिखाने को जलाते रहिये

आबरू लूटने वाले तो बरी हो भी गये
आप क़ानून पे क़ानून बनाते रहिये

ख़त्म हो जायँ न रिश्ते यह हमेशा को कहीं
मिलने जुलने की कोई राह बनाते रहिये

बा अमल मंज़िले मक़सूद पर पहुँच भी गये
आप हाथों की लकीरें ही दिखाते रहिये

हर ख़ुशी सो गई बेवक़्त यह माना फिर भी
ज़िन्दगी के लिये कुछ ख़्वाब सजाते रहिये

ज़मीर जो भी कहेगा वही कहेंगे हम
आप इल्ज़ाम पे इल्ज़ाम लगाते रहिये

पसलियाँ भूख से अब पीठ हुई जाती है
आप पर भूख का अन्दाज़ लगाते रहिये

आप रहबर है तो फिर आप से शिकवा कैसा
आप बस अपने गुनाहों को छिपाते रहिये

# ग़ज़ल

दुनिया के ग़म को अपना बनाये हुये हैं हम
या यूँ कहें कि ख़ुद को भुलाये हुये हैं हम

हँसने का राज़ जानने वालों को क्या पता
कितने ग़मों को इसमें छिपाये हुये हैं हम

क़िस्मत ने गर उजाड़ा नशेमन तो क्या हुआ
यादों का एक गाँव बसाये हुये हैं हम

नज़रे-करम से आपकी हैं दूर इसलिये
बेहद क़रीब आपके आये हुये हैं हम

तर्के-ताऊलुक़ात को मुद्दत हुई मगर
एक रिश्तये-ख़याल बनाये हुये हैं हम

ख़ुद ही से हमारी नहीं बन पाई वगरना
दुनियाँ में तो सभी से बनाये हुये हैं हम

दीवारें रोज़ गिरने का दावा तो है ज़रूर
दीवारें दिल में अब भी बनाये हुये हम

शहरों को क़ुमक़ुमों से सजा करके क्या मिला
जंगल का गर निज़ाम चलाये हुये है हम

हम कौन है ख़ुदा को भी पहचानना मुहाल
चेहरों पे इतने चेहरे लगाये हुये हैं हम

जिनका इलाज है न किसी चारागर के पास
कुछ इस तरह के ज़ख़्म भी खाये हुये हैं हम

# गणतंत्र दिवस पर

गत पीढ़ी के यौवन ने
ललकारा था सत्ता को
और' शपथ दिलाई रावी-तट
पर, भारत की जनता को
अब मत पूछो तबसे कितने
बलिदान हुए औ' कितने
संघर्षों के बाद मिला है
सिंहासन जनता को!

× × ×

यह मुक्ति पर्व है—विजय पर्व—जन जन का, जन सत्ता का
यह पुण्य पर्व—संकल्प देश का—जन-जन में समता का
इस महापर्व की किन्तु एक है छोटी सी परिभाषा
गणतंत्र दिवस तो राजतिलक है भारत की जनता का

है शपथ तुम्हें बापू के सुन्दर स्वप्न न मिटने पायें
औ' प्रजातंत्र की महाज्योति यह कभी न बुझने पाये
युग के प्रहरी हो सावधान षड्यंत्र बहुत होते हैं—
जनता के सिर का राजमुकुट यह कभी न छिनने पाये

# राजघाट पर एक शाम

इकतीस जनवरी कर दिन कुछ ऐसा ही था,
थी सुबह मगर लगती थी डूबी हुई शाम।
फीकी फीकी थी किरण, बुझा-सा सूरज था,
लग जाय ग्रहण जैसे या मुर्झा जाये घाम।

थी भरी कली से उपवन की हर डाल डाल,
पर लगता था हर कली विहँसना गई भूल।
आता कुछ ही दिन बाद बसंत बहार लिये,
पर लगी नज़र ऐसी कि चमन हो गया धूल।

थी थकी थकी हर चाल, साँस डूबी डूबी,
हर आँचल गीला था, हर आँख भर आई थी।
हर वाणी पर था पड़ा कफ़न ख़ामोशी का
हर चेहरे पर छाई मातमी सियाही थी।

सूनी सूनी थी दिल्ली की हर एक गली,
सूना था चौराहा, सूना था हर मकान
था लगा मौत का श्राप इस तरह कण कण को,
जैसे दिल्ली हो सचमुच सदियों से मसान।

था निशि का अन्तिम पहर, भोर भी हो जाती,
पर तभी उठा तूफ़ान, हो गया अँधियारा।
छल किया नियति ने तभी देश की क़िस्मत से,
ले गई तोड़ कर हाय धरा का ध्रुवतारा।

धरती बन जाये स्वर्ग, स्वर्ग यह सह न सका,
मानव की विजय न देव कभी सह पाये हैं।
चिर सत्य यही, इतिहास इसे ही दुहराता,
अवतारी बनकर यूँ बहुतेरे आये हैं।

यह नियति-नटी बहुरूपा है मेनका सदृश,
जाने कैसे विष भरती है जीवन-घट में।
इसने ही लटका दिया मसीहा सूली पर,
या सत्य खड़ा कर दिया कभी जा मरघट में।

सुकरात कर गया गरल पान इसके हाथों,
इसने ही पल में किया राम को बनवासी।
इसने छीना हमसे ईमान मुहम्मद का,
इसने ही छीना दयानंद-सा संन्यासी।

है कुटिल नियति की चाल, काल की निर्ममता,
है सब धर्मों का मर्म, यही है सत्य-सार।
जीता जितनी ही बार सत्य का तेज यहाँ,
जीता उतनी ही बार धरा पर अंधकार।

हो गई भस्म तन की कुटिया कुछ ही क्षण में,
पल में तजकर चल दिये प्राण चिर-संन्यासी।
रह गई शेष कुछ धूल, शेष रह गया धुआँ,
रह गये हाथ मलते सारे भारतवासी।

मैं राजघाट पर आज यही था सोच रहा,
जाने कब आयेगा भारत में फिर गांधी।
पर राजघाट का कण कण मुझसे बोल उठा,
"था मनुज मगर था और बहुत कुछ भी गांधी।

आखिर साँसों का सफ़र ख़तम होना ही था,
सब दिन प्राणों को बाँध न पाता तन नश्वर।
तुम भीख माँगते रहे काल से जीवन की,
गांधी ने पाई मौत ज़िन्दगी से सुन्दर।

गांधी है चिर नूतन, गांधी है चिर पुराण,
गांधी के स्वर में मुखर हुआ स्वर गीता का।
गांधी भारत का नहीं विश्व की पूँजी है,
गांधी है संगम सतयुग, द्वापर, त्रेता का।

गांधी विश्वास अडिग नर के नारायण में,
गांधी विश्वास अडिग हल और कुदाली में।
गांधी विश्वास अडिग कि प्यार की जय निश्चय,
गांधी रेशम की डोर ईद दीवाली में।

गांधी के लिए न रोओ गांधी जीवित है,
वह युग-सीमाओं में न कभी बँध पाएगा।
गांधी आया था प्रथम किरण के साथ यहाँ,
औ' महाप्रलय के अन्तिम दिन ही जायेगा।

की दया प्रतिष्ठित मानवता के मंदिर में,
गांधी ने समझी दीन आँसुओं की भाषा।
युग-पुरुष नहीं था सिर्फ़ काल से आगे था,
गांधी था आने वाले युग की परिभाषा।

गांधी न गया है स्वर्गलोक, कर मृत्यु वरण,
वह मुक्त आत्मा व्याप्त हो गया कण कण में।
दे नई प्रेरणा, नये सृजन का मंत्र फूंक,
अवतरित हुआ है वह जन जन के जीवन में।

वह कड़ी जेठ की दोपहरी में तपता जो,
वह ग्राम-देवता और न कोई गांधी है।
जो लदा पसीने से लड़ रहा पहाड़ों से,
वह श्रम-भागीरथ और न कोई गांधी है।

वह अलख जगाता घूम रहा जो गाँव गाँव,
वह क्रांतिदूत[1] भी और न कोई गांधी है।
वह जो दे रहा चुनौती एटम बम को भी,
वह शांतिदूत[2] भी और न कोई गांधी है।

अब नई सुबह में कुछ संदेह नहीं साथी,
अब नवयुग का नव सूर्य निकलने वाला है।
मानव-वीणा के कोमलतम उर-तारों से,
मंगल गीतों का निर्झर झरने वाला है

बैठा है आज विश्व बारूदी टीले पर,
है युद्ध-जर्जरित भूमि हवा में है नफ़रत।
तब सकल विश्व की आँख लगी है एक ओर,
क्या नव संदेश देता है गांधी का भारत।

अब नहीं बनेंगे और यहाँ नागासाकी,
अब नई सुबह की नई किरण आने को है।
अब टिक न सकेंगी मनुज मनुज में दीवारें,
सारी धरती इंसानों में बँटने को है।

हो चुकी बहुत दिन खेती अब तलवारों की,
हो चुका बहुत दिन राज यहाँ संगीनों का।
रह चुका बहुत दिन दास मनुज दानवता का,
तोपों का, टैंकों का, बेरहम मशीनों का।

---

1. विनोबा, 2. नेहरू

अब घृणा न पोंछ सकेगी माथे की बिंदिया
अब निगल न पाएगी व घर का उजियारा,
अब नहीं रक्त की होली होगी धरती पर
अब नहीं रहेगा और यहाँ पर अँधियारा।

फिर ढपली पर आल्हा होगी चौपालों में
फिर से गूँजेंगे भजन सूर के मीरा के,
फिर कथा कही जाएँगी हीरे-राँझों की
फिर से गाए जाएँगे भजन कबीरा के।

फिर से होली का फाग, अबीर गुलाल रंग
जो इन्द्रधनुष भी देख धरा को शर्माये,
फिर रसियों की मदभरी रसीली छेड़छाड़
फिर नृत्य कि जिस पर ताल बँधी-सी रह जाएँ।

धरती पहिनेगी फिर से वासंती सारी
कंचुकी टँकी होगी शबनमी सितारों से,
होंगे कुंडल चम्पा के, गजरे गेंदों के
होगी फिर वेणी गूँथी हारसिंगारों से।

पनघट पर फिर छलकेगी नीर-भरी गगरी
फिर थिरकेगा अँगियों में गदराया यौवन,
फिर होगी आँख-मिचौनी कान्हा-राधा की
फिर आएगा कजरी विरहा गाता सावन।

किन्नरियाँ कह देंगी बरबस यह रूप देख
लग जाए हमारी उमर धरा के यौवन को,
अब गिरे न गाज कभी धरती के आँगन में
अब लगे न नज़र कभी श्रम के वृदांवन को।

ऐसी कुछ सुंदर दुनिया बसने वाली है
ऐसा कुछ रसमय जीवन बनने वाला है,
अब धर्म निकलकर मंदिर मस्जिद गिर्जे से
मानवता के साँचे में ढलने वाला है।''

फिर राजघाट बोला ''है क़सम तुम्हें मेरी
आए चाहे तूफ़ान, प्रलय ही आ जाए,
तुम चलो कुचल चाहे अपने अरमान मगर
मस्तक मानवता का न कभी झुकने पाए।''

# जन जन की जय

जन जन की जय जनता की जय
प्रजातंत्र की जय बोलो
भारत की बीमार जवानी
भारत का बचपन भूखा,
दफ़्तर में खेती होती है
खेतों में पड़ता सूखा।

असली दाम दवाएँ नक़ली
असली चोर-बाज़ारों में,
भेद नहीं कुछ मिल पाता है
रक्षक में हत्यारों में।

बिना दवा मरने वाले की क़िस्मत पर रोने वालो
नक़ली गोली खाकर जो मर गया—उसी की जय बोलो।

लड़की कौड़ी दाम बिक गई,
लड़का बिका हज़ारों में,
पैसा ले संबंध जुड़ा है
देखो दो परिवारों में।

धूम-धाम बाजे-गाजे से
चहल-पहल तो हो जाती,
मन-आँगन जो हँसी गुँजा दे
नहीं किराये पर आती।
आशीर्वादों औ' उपहारों की गठरी लाने वालो
जिसका घर बिक गया ब्याह में—उसी बाप की जय बोलो।

बूढ़े की लाठी बनने का
कोई सपना टूट गया,
भरी जवानी की गठरी को
कहीं बुढ़ापा लूट गया।

सिर पर डिग्री का बोझा ले
कोई दर-दर घूम रहा,
बिना पसीने के ही कोई
सुख-वैभव में झूम रहा।

सागर से यौवन को धीरज की शिक्षा देने वालो
रिश्वत दे मिल गई नौकरी जिसे,—उसी की जय बोलो।

इतना मन का अँधियारा है
कुछ भी समझ नहीं आता,
सब के मुँह पर राम-राम पर
हर कोई धोखा खाता।

आदर्शों की सीता तो कब की
बनवासिन घूम रही,
और सफलता पद-लोलुप
दल-बदलों के पग चूम रही।

शंका के अर्जुन को गीता का पथ दिखलाने वालो
नैतिकता का हवन करे जो,—उसी मनुज की जय बोलो।

# महिला वर्ष

(१)

बीड़ी, पान, तमाखू, सूटिंग टी.वी. हो या लिम्का,
हर विज्ञापन भोंडा चित्रण है नारी नख-शिख का।
बेच रहा कोई उरोज कटि कोई बेच रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(२)

भावी पीढ़ी नाच रही भद्दी आवारा धुन पर,
भूखी आँखें गड़ी हुई हैं श्रद्धा के यौवन पर।
लज्जा की साड़ी का आँचल कोई खींच रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(३)

कड़ी धूप में लदी पसीनों अंग अंग जर्जर है,
जिसकी बीते रात सड़क पर, हर मौसम पतझर है।
उसका श्रम गंगा-सा पावन क़ीमत माँग रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(४)

रूप-हाट में बैठी है जो वह भी अबला नारी,
जिसकी है हर रात सुहागिन पर हर साध कुआँरी।
अधरों पर फागुन, नयनों से सावन बरस रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(५)

परिणय नहीं स्वर्ग में होता होता अख़बारों में,
लड़का हो, कैसी भी हो फिर बिकता बाज़ारों में।
बाप मरा कर्ज़े में भाई किश्तें चुका रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(६)

ब्याह हुआ अँगना छूटा सखियों से हुई विदाई,
वैभव की बारात साथ वह किन्तु नहीं ला पाई।
कुछ दिन बाद उसी की कोई अर्थी सजा रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(७)

कला वही जिससे अच्छे इंसान बना करते हैं,
चुम्बन-आलिंगन ही को तो कला नहीं कहते हैं।
धन का लोलुप नैतिकता की होली जला रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(८)

यह सीता का देश, हवा मीरा के भजन सुनाती,
राधा की पावन प्रीत यहाँ यमुना अब तक दुहराती
नया जागरण द्रुपदा को निर्वसना बना रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(९)

नारी अम्बा जगदम्बा है दुर्गा और भवानी,
सकल सभ्यता उसके तप की है अविराम कहानी।
उस गौरव गाथा के कोई पन्ने फाड़ रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

(१०)

प्रायश्चित का पुण्य मुहूरत सदा नहीं मिलता है,
बीत जाये तो समय कभी भी क्षमा नहीं करता है।
युगों-युगों से नारी का सब पर आभार रहा है,
महिला वर्ष देश मेरा पर फिर भी मना रहा है।

# चमचों की जय, चमचों की जय

चमचों की जय, चमचों की जय
हो चमचों के चमचों की जय

हो सरकारी चमचों की जय,
हो अधिकारी चमचों की जय।
चमचों के आगे पीछे जो,
उन दरबारी चमचों की जय।

गांधी की जय से क्या होगा,
नेहरू की जय से क्या होगा।
भारत में जो कुछ भी होगा,
चमचागीरी से ही होगा।

जप, तप, तीरथ करने से बोलो,
किसको क्या मिल जाता है?
चमचागीरी करने के क़िस्मत,
का फाटक खुल जाता है।

चमचागीरी है कला किन्तु वह,
नहीं सिखाई जाती है।
विद्यालय के कमरों में भी,
वह नहीं पढ़ाई जाती है।

नभचर को बोलो कब कोई,
नभ में उड़ना सिखलाता है ?
जलचर को भी जल बीच,
तैरना बोलो कौन सिखाता है ?

ज्यों काश्मीर में केसर औ'
काजू केरल में ही मिलता।
चमचागीरी का फूल सदा,
कुर्सी की क्यारी में खिलता।

चमचों की गाथा कौरव कुल,
से अब तक चलती आई है।
कवियों ने भी ऊँचे स्वर में,
चमचों की महिमा गाई है।

है बड़ा राम का दास राम से,
यह रामायण सिखलाती।
औ' जैसी बहे बयार बहो,
'गिरधर' की वाणी दुहराती।

जैसे सुहाग सिन्दूर बिना
नारी पर नहीं सुहाता है
वैसे ही चमचे औ' कुर्सी का,
जनम जनम का नाता है।

फिर भी यह एक पहेली है,
जो नहीं सुलझने पाई है।
कुर्सी से चमचा आया, या,
चमचे से कुर्सी आई है ?

है आज मिलावट सभी जगह,
इसलिए तुम्हें समझाता हूँ।
असली औ' नक़ली चमचों की,
पहचान तुम्हें बतलाता हूँ।

नक़ली चमचा कुछ देर बाद,
मौसम-सा ढंग बदलता है।
असली चमचे के आगे
गिरगिट भी आते शर्माता है

तुम भी चमचा बन सकते हो,
यदि स्वाभिमान का दमन करो।
अपना हर काम बनाने को,
सब आदर्शों का हवन करो।

चमचा तुम-सा ही होता है,
बस केवल नाक नहीं होती।
वह सब धर्मों से ऊपर है,
चमचों की ज़ात नहीं होती।

यदि हर कोई संकल्प करे,
औ' सच्चा चमचा बन जाये।
फिर जाति-पाँति का प्रश्न देश,
से सदा सदा को मिट जाये

चमचा सुख का साथी, उगते,
सूरज को अर्घ्य चढ़ाता है।
फिर 'शाह' कमीशन के सम्मुख,
जा अपना धर्म निभाता है।

कल नसबंदी करवाते थे,
कहते थे 'संजय' की जय हो।
मैं देख रहा हूँ आज उन्हें,
कहते हैं 'जनता' की जय हो।

वैसे तो प्याला ही हर चमचे,
का काबा औ' काशी है।
प्याला फिर भी नश्वर है,
चमचा अजर अमर अविनाशी है।

प्याला टूटे, तो टूटे, चमचे का,
कब कहाँ बिगड़ पाता।
चमचा फ़ौरन ही और किसी,
प्याले में जाकर पड़ जाता।

तुम भी भारत के वासी हो,
मेरा भी भारत ही घर है।
पर हम दोनों की राह अलग,
हम दोनों में कुछ अन्तर है।

तुम झूठे मन से बोल रहे,
गांधी की जय गांधी की जय।
मैं सच्चे मन से बोल रहा,
चमचों की जय, चमचों की जय।

सतयुग से त्रेतायुग आया,
त्रेता से द्वापर युग आया।
द्वापर से कलियुग, कलियुग
के पीछे फिर गांधी-युग आया।

मुट्ठी भर लोगों से कब तक,
गांधी-युग चलने वाला है।
गांधी-युग के जाते जाते,
चमचा-युग आने वाला है।

कवि हूँ, युगद्रष्टा, इसीलिए,
तो इस रहस्य को खोल रहा।
मैं आने वाले चमचा-युग के,
स्वागत में जय बोल रहा।

चमचों की जय, चमचों की जय!
हो चमचों के चमचों की जय!!

# तब तक सृजन अधूरा

ज्योति किरण नभ से उतरी जो अभी अटारी तक आई है,
तब तक सृजन अधूरा जब तक हर आँगन में धूप न आये।

कहीं एक केसर की क्यारी
कहीं एक दो नन्दन वन है,
शेष धरा प्यासी की प्यासी
शेष वही जीवन-क्रन्दन है।

भरने को परिमल पराग से
कुछ उपवन भर जायें लेकिन,
नहीं बसन्त मनाओ जब तक
हर बगिया में फूल न आये।
तब तक सृजन अधूरा जब तक
हर आँगन में धूप न आये।

कहीं एक दो भटकी बूँदें
कहीं एक बादल आवारा,
नहीं एक कजरी गाने से
आ सकता है सावन सारा।

मत समझो कागा बोले तो
निश्चय ही कोई आयेगा,
तब तक सगुन उठाओ जब तक,
कोई पाहुन द्वार न आये।
तब तक सृजन अधूरा जब तक
हर आँगन में धूप न आये।

मत समझो कोलाहल से ही
धरती की क़िस्मत बदलेगी
बहे पसीना, चले कुदाली
तब सुख की गंगा उतरेगी

पर्वत चीर चली जो गंगा
अभी जटाओं तक आई है
जब तक बचपन भूखा सोये
तब तक तुमको नींद न आये

तब तब सृजन अधूरा जब तक
हर आँगन में धूप न आये

बापू की पावन समाधि पर,
तुमने आज क़सम खाई है।
जन-नायक की आकुल वाणी,
ऊँचे स्वर में दुहराई है।

सजा राजपथ अब भी केवल,
तो गलियारों का क्या होगा।
स्वप्न अधूरे हैं जब तक हर,
गीला आँचल सूख न जाये।

तब तक सृजन अधूरा जब तक,
हर आँगन में धूप न आये।

लाल क़िले की दीवारों से,
बहुत बार क़समें खाई हैं।
नारों से अम्बर गूँजा है,
जर्जर रस्में दुहराई हैं।

सत्ता चल कर राजभवन से,
अभी राजपथ तक आई है।
तब तक शपथ अधूरी जब तक
जन जन को विश्वास न आये

तब तक सृजन अधूरा जब तक,
हर आँगन में धूप न आये।

नई सुबह के सुख सपनों पर
अभी सघन बदली छाई है
कैसे पग रुक गये तुम्हारे
मंज़िल अभी नहीं आई है
अरूणाई तो नई सुबह का
केवल संदेशा लाई है
स्वर्ण विहान न समझो जब तक
सूरज तम से जीत न जाये
तब तक सृजन अधूरा जब तक,
हर आँगन में धूप न आये।

आज़ादी लाने वालों के,
जीवन की अब शाम हुई है।
और वसीयत में आज़ादी,
अब यौवन के नाम हुई है।
बरसों बाद तुम्हारी भी कुछ,
करने की बारी आई है।
ऐसा कुछ कर दो जग तुमको,
सदियों सदियों भूल न पाये।
तब तक सृजन अधूरा जब तक,
हर आँगन में धूप न आये।

# गीत गाओ न मेरे

गीत गाओ न मेरे अलग बात है
प्यार ने जो कहा कह दिया गीत में
दर्द ने जो कहा, लिख दिया गीत में।

ज़िन्दगी एक सफ़र, सब मुसाफ़िर यहाँ
शाम या रात तक सब पहुँच जायेंगे,
कुछ तो ढोते हुए भार-सी ज़िन्दगी
और कुछ प्यार का गीत बन जायेंगे।
साथ दो या न दो यह अलग बात है
फ़र्क़ मानो मगर पंथ के मीत में
प्यार ने जो कहा, कह दिया गीत में।

सात भाँवर यहाँ जान-पहचान भर
कुण्डली व्यर्थ है जो मिलाई गई,
हर शपथ व्यर्थ, सौगंध बेकार है
प्यार ही की क़सम गर न खाई गई।
प्यार दो या न दो यह अलग बात है
फ़र्क़ मानो मगर प्रीत में, रीत में।
प्यार ने जो कहा, कह दिया गीत में।

ज़िन्दगी खेल शतरंज-सा है यहाँ
एक पल जीत है, एक पल मात है,
वक़्त जो भी मिला, प्यार से बोल लो
क्या पता कौन-सी आख़िरी रात है।

खेल खेलो न खेलो अलग बात है
फ़र्क़ मानो मगर हार में, जीत में।
प्यार ने जो कहा, कह दिया गीत में।

स्वर्ग-सी यह धरा, स्वर्ग-सा यह भुवन
आदमी के बिना एक सुनसान है,
ज्ञान-विज्ञान के गर्व में झूमता
प्यार बिन आदमी सिर्फ़ हैवान है।
छंद गाओ न गाओ अलग बात है
फ़र्क़ मानो मगर गद्य में, गीत में।
प्यार ने जो कहा, कह दिया गीत में।

# एक स्पष्टीकरण

ये ऐसी बेरुख़ी क्योंकर, यह ऐसी बेनियाज़ी क्यों,
न जाने कान में उनके क़रीबों ने कहा क्या है।
न कोई गुफ़्तगू हमसे, न कोई मशविरा[1] हमसे,
ख़ुदारा कुछ तो फ़रमायें कि बन्दे की ख़ता क्या है।

सरासर जुर्म करते हो, बहुत मासूम बनते हो
मुझी से पूछते हो तुम कि बन्दे की ख़ता क्या है।
जो मुझसे पूछते हो तुम वही मैं पूछता तुम से
कि क्यों हसंते है और सबको हसांने की वजह क्या है।

मैं गुमसुम हो गया सुनकर, ज़ेहन भी खा गया चक्कर,
मेरे मौला, मेरे रहबर, यह तोहमत और मेरे सर पर।
बहुत मायूस लौटा घर, अबस अपना सा मुँह लेकर,
रहा मैं सोचता दिनभर कि हंसना जुर्म है क्योंकर।

नहीं मैं आप पर हसंता न ग़ैरों पर ही हँसता हूँ,
किसी की शक़्लो सूरत ऐबो फ़ेलों पर न हँसता हूँ।
अगर हँसता हूँ तो हँसता हूँ मैं अपने मुक़द्दर पर,
कभी गर्दिश पे हँसता हूँ, कभी मैं ख़ुद पे हँसता हूँ

---

1. परामर्श

अरे हंसना तो उसकी नेमतों में इक नियामत है
कि हँसने के बिना यह ज़िन्दगी क्या है क़यामत है
कि हँसना हुस्न है इख़लाक़ का, तहज़ीब का परचम
कि हँसना आदमी की आदमीयत की अलामत है

हँसाना जुर्म है तो जुर्म यह तसलीम है मुझको;
बड़ी तौफीक़[1] है उसकी, बड़ी उसकी इनायत है।
हसाँना दीन है मेरा, यही ईमान है मेरा,
मयस्सर हो हँसी सबको, यही मेरी इबादत है।

नहीं है पास कुछ दौलत, नहीं कोई रियासत है
जगह हर एक के दिल में मगर फिर भी बनाई है
किसी के अश्क पोछें है, किसी का मन किया हल्का
यही बस अपनी दौलत है, यही अपनी कमाई है।

1. ईश्वर की अनुकम्पा

# नव वर्ष-समय का देवता

जो गया है बीत उसको भूल जाओ
और कोई गीत नूतन गुनगुनाओ

वक़्त कब किस पर हुआ करता सदय है
जो समय के साथ है उसका समय है
क्या करोगे विगत की मनुहार करके
भाल पर नव वर्ष के चन्दन लगाओ

जो गया है बीत उसको भूल जाओ
और कोई गीत नूतन गुनगुनाओ

है अनोखा देवता कितना समय का
भेद कब देता पराजय का विजय का
शाप कब वरदान बन जाये न जाने
हर प्रहर को प्यार से सीने लगाओ

जो गया है बीत उसको भूल जाओ
और कोई गीत नूतन गुनगुनाओ

क्या पता किस स्वप्न का अभिषेक होगा
क्या पता किस स्वप्न को बनवास होगा
स्वप्न लेकिन आदमी की है विवशता
आज सपनों से अनागत कल सजाओ

जो गया है बीत उसको भूल जाओ
और कोई गीत नूतन गुनगुनाओ

कौन जाने गर्भ में कल के छिप क्या ?
कौन जाने भाग्य में किसके लिखा क्या ?
रुठने मत दो समय के देवता को—
नित नये संकल्प से उसको मनाओ

जो गया है बीत उसको भूल जाओ
और कोई गीत नूतन गुनगुनाओ

विश्व में हर शक्ति की प्रतिमा बनी है
पर कहीं भी समय की प्रतिमा नहीं है
चिर सनातन है समय का देवता पर
वर्ष के शुभ स्वागतम् में गीत गाओ

जो गया है बीत उसको भूल जाओ
और कोई गीत नूतन गुनगुनाओ

हो समय अनुकूल तो त्योहार जीवन
हो समय प्रतिकूल तो है भार जीवन
कर्म पर ही मनुज का अधिकार केवल
समय-पथ पर कर्म के दीपक जलाओ

जो गया है बीत उसको भूल जाओ
और कोई गीत नूतन गुनगुनाओ।

# 15 अगस्त 1947

कल्पना करो, नवीन कल्पना करो
आज राष्ट्र की नवीन कल्पना करो
राष्ट्र की ध्वजा प्रतीक सभ्यता की हो
राष्ट्र विश्व का प्रखर प्रकाश पुंज हो
राष्ट्र की महानता की कामना करो
कल्पना करो नवीन कल्पना करो

कोई दुखी न हो यहाँ दरिद्रता न हो
ऊँच नीच की हृदय में भावना न हो
समाज वर्गहीन हो यह कामना करो
कल्पना करो नवीन कल्पना करो

हो जहाँ अधर्म बस उधर प्रयाण हो
कौन है विपक्ष में यह न ध्यान हो
किन्तु विश्व के विजय की भावना न हो
कल्पना करो नवीन कल्पना करो

नवीन भोर में नवीन सूर्य उग रहा
नवीन चेतना लिये मनुष्य जग रहा
कर्मवीर, भाग्य से न याचना करो
कल्पना करो महान कल्पना करो

तोड़ दो समाज की सभी कुरीतियाँ
और पाँव में पड़ी समस्त बेड़ियाँ
नये समाज के सृजन की नींव के लिये
कल्पना करो समर्थ कल्पना करो

कल्पना करो, नवीन कल्पना करो
आज राष्ट्र की नवीन कल्पना करो

# एक दीपावली-एक चिन्तन

दीप जलाओ, दीप जलाओ
सबके मन में दीप जलाओ
हर आँगन में दीप जलाओ
हर देहरी पर दीप जलाओ

माना अगर न सूरज होता, धरती सब बंजर रह जाती
यह पूनो का चाँद न होता, सिर्फ़ अमावस ही रह जाती
सूरज का है कर्ज़ सभी पर, उसको अर्घ्य चढ़ाओ लेकिन
जिसने पहला दिया बनाया, उसके श्रम को शीश नवाओ

दीवाली तो ज्योति पर्व है जगमग देहरी द्वार सजाओ
अंधियारा रह न जाय जग में ऐसा कोई दिया जलाओ
एक अमावस हो तो माटी के दीपक से भी कट जाये
युग की गहन अमावस हो तो तमसो मा: का पथ दिखलाओ

दीप मालिके नभ से उतरो, स्वागत है सौ बार तुम्हारा
पर है प्रश्न कि उजियारे को कैसे निगल गया अंधियारा
एक दीप तो अधियारों से लड़ते लड़ते थक जायेगा
दीप मालिके जन जन में तुम नये सृजन की अलख जगाओ

कहीं अमावस इतनी गहरी ज्योति किरण जाते सकुचाये
कहीं विवश जीवन बैठा है कब से सुख की आस लगाये
वैभव की छाया भी जिन गलियों में अब तक पहुँच न पाई
दीप मालिके उन अंधियारी गलियों में दीपक ले जाओ

बचपन रोकर कहीं सो गया एक खिलौने का हठ करके
कहीं भूख से रात न कटती, नींद उचट जाती रह रह के
जो ख़ुशियों की झलक देखने को भी तरस रहे हैं अब तक
दीप मालिके उनके घर भी खील बताशे लेकर जाओ

कहीं उदासी खड़ी द्वार पर दीवाली की बाट जोहती
कोई देहरी जाने कब से दीपों को संदेश भेजती
जिनके जीवन की रातों में अब तक प्रात नहीं आया है
दीप मालिके, उनके हिस्से की दीवाली लेकर आओ

बहुत दिनों सज चुकी अटारी, वैभव बन्द रहा तालों में
पूजन अर्चन सिमट गया सब सोने चाँदी के थालों में
दीप मालिके यह अनीति, अन्याय बहुत दिन चल न सकेगा
अम्बर हर्षे, धरती तरसे अब यह रीति मिटाने आओ

हर आँगन में दिया जलाओ
हर देहरी पर दीप जलाओ
सृजन पर्व इस तरह मनाओ
ज्योति पर्व त्योहार मनाओ

# विदेश में देश की याद

ऊपर नील गगन है, नीचे बिछी हरी मख़मल है
लहरें नाँच रही झीलों में, सरिता में कलकल है
तरुओं के झुरमुट दिखते हैं जिधर दृष्टि जाती है
फिर भी मेरे देश तुम्हारी याद बहुत आती है

मृग छौनों सी राजमार्ग पर कारें घूम रही हैं
बहु मंज़िलें भवनों की चोटी अम्बर चूम रही हैं
पथ में खिलती धूप, कभी बदली घिर घिर जाती है
फिर भी मेरे देश तुम्हारी याद बहुत आती है

इन्द्रपुरी धरती पर उतरी या है जादू टोना
या फिर सचमुच सत्य हुआ है कोई स्वप्न सलोना
भाषा भी जिसको शब्दों में बाँध नहीं पाती है
फिर भी मेरे देश तुम्हारी याद बहुत आती है

यूँ लगता है नगर नगर में जैसे है दीवाली
वैभव की वर्षा होती है चहुँ दिशि है ख़ुशहाली
इनके मन में घिरी अमावस किन्तु न घट पाती है
मेरे देश तुम्हारी मुझको याद बहुत आती है

इस मिट्टी में नहीं पड़े हैं कहीं चरण सीता के
यहाँ हवा में नहीं गूँजते कहीं वचन गीता के
भोर यहाँ सूरा मीरा के भजन नहीं गाती है
मेरे देश तुम्हारी मुझको याद बहुत आती है

प्रीत यहाँ राधा की कोई समझ नहीं पाता है
त्याग तपस्या की भाषा भी बोल नहीं पाता है
श्रद्धा-स्वर में साँझ आरती यहाँ नहीं गाती है
मेरे देश तुम्हारी मुझको याद बहुत आती है

यूँ तो सूरज चाँद वही नीला आकाश वही है
आँख मिचौनी का बिजली बादल का खेल वही है
पर अपनी मिट्टी की सोंधी महक नहीं आती है
मेरे देश तुम्हारी मुझको याद बहुत आती है

दूर देश अनजान नगर है बिन साथी चलना है
वैभव की जलधार बीच बस तिनके सा बहना है
भीड़ और मन को एकाकी पन से भर जाती है
मेरे देश तुम्हारी मुझको याद बहुत आती है

सागर की गहराई चाहो या नभ की ऊँचाई
दोनों तक पहुँचा देती है तुलसी की चौपाई
बिन मर्यादा सारी सुख-सम्पदा बिखर जाती है
मेरे देश तुम्हारी मुझको याद बहुत आती है

जीवन है आकाश किन्तु केवल आकाश नहीं है
जीवन है धरती भी लेकिन केवंल धरा नहीं है
जीवन है तृष्णा भी लेकिन जीवन घट सीमित है
टूट जाये तो हाथ सिर्फ़ मृगतृष्णा रह जाती है

मेरे देश तुम्हारी मुझको याद बहुत आती है

# बंगाल का अकाल ( 1940 )

(१)

कलकत्ते के फ़ुट पाथों पर
अरमान तड़पते देखे
जर्जर पंजर में मानव के
पर, प्राण अटकते देखे

(२)

देखा जीवन का जीवन से
होता संघर्ष पुराना
क्रूर निर्यात के कर में
मानव का पुतला बन जाना

(३)

वहाँ मनुज ने दानों से
नारीत्व मूल्य आँका था
चाँदी के कुछ टुकड़ों से
मानव-जीवन नापा था

(४)

कितने बच्चे माँ की छाती
से लगे लगे रह जाते
कुछ 'रोटी' 'रोटी' रटते ही
सो जाते, जाग न पाते

(५)

कुछ तो थे संज्ञाहीन और
कुछ में था केवल एक साँस
कुछ पर टूटे गिद्धों के दल
कुछ का खाती थीं चील माँस

(६)

दासत्व भावना से पिसकर
मानव कितना गिरता है
पुरुषत्व नहीं, पुरुषार्थ नहीं
बंगाल इसे कहता है

(७)

क्या यही अन्त इस जीवन का?
क्या यही अर्थ नश्वरता का?
क्या इसी नियम से जग शासित?
क्या यही दंड निर्बलता का?

(८)

भूखे 'ओ माई', 'ओ बाबू जी'
कहते कब थकते थे
निर्दयता को देते अशीष
पाषाण कहाँ सुनते थे

(९)

उस ओर जिन्दगी हँसती थी
प्यालों में जीवन गतिमय
प्यारी प्याली के दीवाने
प्यारी प्याली में तन्मय

(१०)

'रोटी' 'रोटी' की आवाज़ें
दीवारों से टकरातीं
प्याले से प्याला बजने की
आवाज़ उधर से आतीं

(११)

मत कहो इसे इतिहास तथ्य
मत कहो इसे जीवन दर्शन
मत कहो इसे विधि का विधान
है यही अरे नवयुग सर्जन

(१२)

मत कहो मात्र संयोग इसे
अपराध हुआ सत्ता से
यह कुटिल चक्र विश्वासघात
है भारत की जनता से

(१३)

क्षमता होती चिन्गारी में
एक ज्वाला मुखी बनाने की
क्षमता होती हर शोषण में
विद्रोही लहर उठाने की

(१४)

भूखे पेटों की ज्वाला जब
विपल्व-ज्वाला बन जाती है
तब बड़ी बड़ी सत्तायें पल में
मिट्टी में मिल जाती हैं

(१५)

इतिहासों के पृष्ठों में यह
केवल अकाल कहलायेगा
पर ओ निर्दय शासक तुमको
यह महाकाल बन जायेगा

(१६)

कवि तुम आहों के, आँसू के अब
गीत नहीं लेकर आओ
जन जन को वाणी देने को
अब क्रान्ति दूत बन कर आओ

# किस पर गर्व करूँ ?

किस पर गर्व करूँ मैं भारत
किस पर गर्व करूँ

तेरी नदियों या तेरे शिखरों पर गर्व करूँ मैं ?
तेरी धरती या तेरे अम्बर पर गर्व करूँ मैं ?
तेरी ऊषा या तेरी सँध्या पर गर्व करूँ मैं ?
या चरणों में लहराते सागर पर गर्व करूँ मैं ?

सदियों पहले शस्य श्यामला कहा गया था तुमको
जगत गुरु की पदवी का सम्मान मिला था तुमको
लेकिन उस बूढ़े भारत पर कब तक गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

पतित पाविनी गंगा का आँचल कितना मैला है
कालिन्दी का पाट मरुस्थल सा विस्तृत फैला है
क्या उसके उजड़े सूने घाटों पर गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

बहुत बड़े थे राम, किन्तु महिमा कब तक गाओगे
और कृष्ण की लीलाओं को कब तक दुहराओगे
बिना आचरण के ही उन पर कैसे गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

गौतम गाँधी की धरती पर रोज़ ख़ून की होली
पोंछ रही सिंदूर माँग का निमर्मता की गोली
कलियों के बिखरे स्वप्नों पर कैसे गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

नारी का सम्मान देश यह कब का भूल चुका है
नैतिकता की होली ही त्योहार नये युग का है
द्रुपदाओं के चीर हरण पर कैसे गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

श्रद्धा हारी थकी भटकती शंका के जंगल में
पूजन अर्चन फंसे हुये हैं पाखण्डी दलदल में
क्या केवल पाषाणी प्रतिमाओं पर गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

सत्ता के हर गलियारे में चौपड़ बिछी हुई है
शकुनि पाँसे फेंक रहे हैं, जनता लुटी पिटी है
युग के दुर्योधन पर बोलो कैसे गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

आदर्शों की सीता तो बनवासिन घूम रही है
पद लोलुपता सत्ता के चरणों को चूम रही है
राजभवन के श्री वैभव पर कैसे गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत, किस पर गर्व करूँ मैं

कुछ वैभव के बढ़ जाने से देश नहीं बढ़ता है
भूखे नंगों से कोई इतिहास नहीं बनता है
कोटि कोटि शोषित पीड़ित पर कैसे गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

मातृभूमि का कर्ज़ चुकाना सबको ही होता है
मुट्ठीभर हाथों से तो निर्माण नहीं होता है,
क्या केवल इतिहासों के पन्नों पर गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत, किस पर गर्व करूँ मैं

गाँव बड़ा है, शहर बड़ा, पर सबसे देश बड़ा है
धर्म बड़ा है, देश धर्म इन सबसे बहुत बड़ा है
खंड खंड में बँटे देश पर कैसे गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत, किस पर गर्व करूँ मैं

हर देहरी पर दीप जले तब ज्योति पर्व होता है
अगणित आहुतियों से मिलकर महायज्ञ होता है
भारत में कितने भारत, किस किस पर गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत, किस पर गर्व करूँ मैं

एक देश हो, एक वेष हो, एक गान हो सबका
एक ध्येय हो, एक दिशा हो, एक ध्यान हो सबका
धर्म देश का जब यह होगा उस पर गर्व करूँगा
तब भारत क्या, भारत के कण कण पर गर्व करूँगा

किन्तु आज तो प्रश्न यही है मेरे व्याकुल मन में
किस पर गर्व करूँ मैं भारत, किस पर गर्व करूँ मैं

तेरी नदियों या तेरे शिखरों पर गर्व करूँ मैं
तेरी धरती या तेरे अम्बर पर गर्व करूँ मैं
तेरी ऊषा या तेरी संध्या पर गर्व करूँ मैं
या चरणों में लहराते सागर पर गर्व करूँ मैं
किस पर गर्व करूँ मैं भारत किस पर गर्व करूँ मैं

# तुमको यही शिकायत

तुमको यही शिकायत कोई द्वार नहीं आया
पर मैं जब भी गया तुम्हारा द्वार बन्द पाया

कुछ ने लिखा लहू से
कुछ के आँसू गीत बने
कुछ लड़ने को अँधियारों से
जलता सूर्य बने

सब गीतों ने खटकाया सौ बार तुम्हारा द्वार
लेकिन तुमको जाने क्यों चारण-स्वर ही भाया
मैं जब जब भी गया तुम्हारा द्वार बंद पाया

तुलसी सीता सी निष्कासित
नागफनी घर घर है
धरती तरस रही जीवन को
झूम रहा अम्बर है
सबके मुख पर लिखी व्यथा की रामायण लेकिन
युग का कोई पंडित अब तक बाँच नहीं पाया
मैं जब जब भी गया तुम्हारा द्वार बंद पाया

कैसे बोये बीज समय ने
भूख उगी खेतों में
सब मिल लाये किन्तु रोशनी
सिर्फ़ अभी महलों में

जाने कितने पत्र किरण के नाम लिखे लेकिन
सूरज के घर से कोई संदेश नहीं आया
मैं जब जब भी गया तुम्हारा द्वार बंद पाया

हर बादल से लगा कि
जैसे अब सावन आयेगा
सबके सीने से आँसू का
कर्ज़ उतर जायेगा
धरती की हर प्यासी क्यारी पूछ रही बादल से
इस बगिया में अब तक क्यों मधुमास नहीं आया
मैं जब जब भी गया तुम्हारा द्वार बंद पाया

तय तो यह था जल्दी ही
तक़दीर बदल जायेगी
थोड़ी थोड़ी सुबह सभी
के हिस्से में आयेगी
उसी भोर का आँखें कब से पंथ निहार रही हैं
आईं कितनी रात किन्तु वह प्रात नहीं आया
मैं जब जब भी गया तुम्हारा द्वार बंद पाया

# राजस्थान भ्रमण पर

समय शिला पर लिखी हुई है
जिस राणा की कीर्ति महान
उस राणा की पुण्य भूमि पर
आज हो रहा नव-निर्माण

किन्तु नहीं चित्तौड़ आज उस
पुण्य भूमि की सीमा है
जहाँ जहाँ पौरुष की जय है
वहाँ वहाँ है राजस्थान

यौवन वह जो मिटे देश पर
और सभी कुछ है माटी
इसी विकलता में राणा ने
बन बन घूम उमर काटी

उठो जवानों, नये सृजन की
बेला तुम्हें बुलाती है
आज यही राणा का प्रण है
आज यही हल्दी घाटी

# समय का दर्शन

## मानव की विकलता

सारी वसुधा सोच रही है, वह युग कब आयेगा।
समय चक्र में जो मानवता का युग कहलायेगा।
या कोई अवतार, मसीहा ही ऐसा आयेगा।
जो धरती पर मानवता का युग लेकर आयेगा।

सतयुग, त्रेता, द्वापर आये, कलयुग भी आया
मानवता के युग का किन्तु प्रभात नहीं आया।
समय द्वार पर खड़ी मनुजता उसके ही स्वागत में
सदियाँ बीत गई लेकिन वह प्रात नहीं आया।

## समय से निवेदन

तुम अम्बर पर छाओ बनकर स्वर्णिम विहान;
तुम उतरो भू पर बन कर चेतनता महान;
तु जागो शोषित पीड़ित में बन स्वाभिमान;
तुम दो मानव को नव आशा, दो नये प्राण;

क्या हुआ अगर तुमने बीते वर्षों की गाथा दुहराई?
क्या हुआ अगर सबके आँगन में सुख की धूप नहीं आई?
क्या हुआ अगर धरती अम्बर की दूरी तनिक न घट पाई?
क्या हुआ अगर मानव ने मानवता की राह नहीं पाई?

कब तक आख़िर जर्जर रस्मों की रीत निभाई जायेगी।
कब तक या मन्दिर मस्जिद में दीवार उठाई जायेगी।
कब तक आख़िर भूखे बचपन को लोरी बहला पायेगी।
कब तक व्याकुल यौवन को धीरज की शिक्षा दी जायेगी।

कुछ तो हो तुम में परिवर्तन, कुछ तो हो तुम में नई बात।
हो नये वर्ष का नया दिवस, हो नई रात हो नव प्रभात।

**समय का उत्तर**

मैं सदैव परिवर्तन का नवगीत लिये आता हूँ
मानव लेकिन मेरी भाषा समझ नहीं पाता है।
मेरा स्वागत सब करते हैं लेकिन सच तो यह है
मन के शुभ संकल्पों से ही नया वर्ष आता है।

जन जीवन में परिवर्तन को नया वर्ष कहते हैं।
युग चिन्तन में परिवर्तन को नया वर्ष कहते हैं।
नई धरा हो, नया गगन हो नये सृजन का स्वर हो
केवल तिथि परिवर्तन को नव वर्ष नहीं कहते हैं।

# कृष्ण और गीता

कृष्ण दीप है, दिव्य ज्योति हैं
जन जन में आशा भी
कृष्ण सतत जीवन पल पल
जीने की अभिलाषा भी,

कृष्ण धरा हैं कृष्ण गगन है
दोनों का संगम भी
कृष्ण समय हैं, समय पृष्ठ पर
लिखी हुई भाषा भी,

गीता जीवन का दर्शन है
दर्शन का दर्शन है
गीता शाश्वत सत्य सनातन
युग युग का चिन्तन है,

गीता जीवन-कला, धर्म
का सार, मनुज की आशा
गीता धरती पर जीवन की
सुन्दरतम परिभाषा।

# राम का मंदिर

बाबरी मस्जिद गिराकर क्या मिला है
आग पानी में लगाकर क्या मिला है
राम की सौगंध है तुमको बताओ
दीप घर घर के बुझा कर क्या मिला है

सैकड़ों दीवार नफ़रत की उठें तो
उस जगह मंदिर बनाकर क्या करोगे
मिट गये यदि राम के आदर्श ही तो
राम का मंदिर बना कर क्या करोगे

राम मस्तक पर मनुजता के तिलक हैं
राम का गुणगान ही कब तक करोगे
आचरण में ही न उतरे राम तो फिर
राम मंदिर में बिठा कर क्या करोगे

राम तो हैं शील सारी सभ्यता के
राम है संदेश मानव में अभय का
राम तो आदर्श का अन्तिम चरण हैं
राम हैं संकल्प दानव पर विजय का

राम को यदि खोजना तुम चाहते हो
मिल सकेंगे राम शबरी के निलय में
या अहिल्या की तपस्या में मिलेंगे
या मिलेंगे फिर किसी केवट हृदय में

या मिलेंगे दीन दुखियों की व्यथा में
या मिलेंगे त्याग की ऊचाइयों में
या मिलेंगे भरत के अनुनय विनय में
या कि तुलसी की सरल चौपाइयों में

या तपस्वी वेष में वन में मिलेंगे
या मिलेंगे भक्त कपि की साधना में
या मिलेंगे राम चिंतित सिन्धु तट पर
लोक हित में शक्ति की आराधना में

रूढ़ि के जर्जर धनुष को तोड़ने में
पढ़ सको तो राम का दर्शन मिलेगा
या विभीषण राम के संवाद में फिर
युग युगों के सत्य का चिन्तन मिलेगा

राम रावण की कथा है चिर सनातन
नित्य नूतन अर्थ पर करता समय है
राम शाश्वत सत्य है प्रत्येक युग का
राम निर्मलता, सरलता और विनय हैं

ईंट चूने का बनाया राम मंदिर
बहुत सम्भव है कि गिर जाये दुबारा
हर हृदय में राम का मंदिर बनाओ
राम का मंदिर बने यह देश सारा

राम जन-मन में बसे हैं युग युगों से
बह रही चिरकाल से यह भक्ति धारा
राम की धरती अयोध्या ही नहीं है
राम जन्मस्थान भारत वर्ष सारा

बावरी मस्जिद गिराकर  क्या मिला है
आग नफ़रत की लगाकर क्या मिला है
राम की सौगन्ध है तुमको बताओ
दीप कितने ही बुझा कर क्या  मिला है

# पारिवारिक

# एक आग्रह

तुम पढ़ाती रहो लड़कियाँ ही वहाँ
इस बगीचे में पतझर उतर आएगा

एक तो फूल जितने सभी मौसमी
दूसरे फूल की है बड़ी कम उमर
तीसरे जिनके घर एक पौदा नहीं
लग न जाये कहीं हाय उनकी नज़र
सोचती तुम रहो अब चलूँ तब चलूँ
फूल क्या पात तब तक बिखर जायेगा।

फूल क्यों हंस रहा जानता कौन है?
क्यों कली मौन है क्यों लजाई हुई?
डाल पर फूल दो क्यों गले मिल रहे?
बेल ने माँग क्यों है सजाई हुई?
एक तुम जानती फूल की व्याकरण
बूझ दो अर्थ सारा उभर आएगा

एक पौदा लगाया, बड़े प्यार से
था संवारा बहुत किन्तु बीमार है
फूल सब अधखिले, पात मेंहदी
लगे, बाग़ को भी उसी एक से प्यार है
तुम बचा लो उसे धूल के शाप से
भाग्य सारे चमन का सँवर जाएगा

फूल खिल तो रहा पूछता है मगर
कौन सी प्यास का दण्ड मुझको मिला
कौन से पुण्य से यह चमन था खिला
कौन से शाप से रह गया अधखिला

और तुम भी गगन से करो प्रश्न तो
प्रश्न में ही समय सब गुज़र जाएगा

# शुभ विवाह पर आशीर्वाद

मंगलमय हो मिलन तुम्हारा
तुम रहो कि जैसे नभ में बादल बिजली
तुम रहो कि जैसे चाँद औ' चाँदनी रूपहली
तुम रहो कि जैसे दीप, दीप की बाती
स्वर और संगीत सदृश हो साथ तुम्हारा
मंगलमय हो मिलन तुम्हारा

उस पार मीत को भटक रहे कितने ही
इस पार मीत को तरस रहे कितने ही
तुम जीवन धारा बीच मिले हो दोनों
हो जनम जनम को यह सम्बंध तुम्हारा
मंगलमय हो मिलन तुम्हारा

यह जीवन क्या है सुख दुख का संगम है
उत्थान पतन जीवन का अटल नियम है
आशीषों आशीर्वादों की छाया में
पूरा हो जाये हर संकल्प तुम्हारा
मंगलमय हो मिलन तुम्हारा

सपनों का सृजन सभी की दुर्बलता है
सब सपनों का अभिषेक नहीं होता है
है धूप छाँव ही कथा सकल जीवन की
पग पग पर समझौता है जीवन सारा
मंगलमय हो मिलन तुम्हारा

हर कोई शब्दों की भाषा पढ़ता है
मन की भाषा पर नहीं पढ़ा करता है
तुम दोनों मन की भाषा पढ़ना सीखो
हो जायेगा सुखमय संसार तुम्हारा
मंगलमय हो मिलन तुम्हारा

धन से सम्बंध यहाँ पल में बन जाते
मन के सम्बंध नहीं सबके बन पाते
धरती तो सबकी हो जाती है अक्सर
पर हो जाये सारा आकाश तुम्हारा
मंगलमय हो मिलन तुम्हारा

# प्रिय गार्गी के शुभ विवाह पर

आज तक ये बहुत दिन अकेली चली
आज तक तुम बहुत दिन अकेले चले

प्रेम का हर पथिक राम सा ही यती
शिव धनुष तोड़ता एक विश्वास ले
रूप की वाटिका बीच सीता कहीं
जोहती बाट है आरती थाल ले

सृष्टि की बात है, जानता कौन है
प्राण से प्राण कैसे विलग हो गये
जन्म कितने लिये, यत्न कितने किये
ढूँढते ढूँढते आज मिल ही गये

प्राण मीरा इधर, प्रीत वंशी उधर
तारको से सजे नील नभ के तले
देवता कुछ बढ़े, कुछ पुजारिन बढ़ी
नत-नयन प्रीत जयमाल डाली गले

दूर कब तक रहेगी लहर कूल से
रूप भी दूर कब तक रहे प्राण से
यह न टूटे कड़ी, प्राण परिणय घड़ी
पंथ में प्रीत के दीप अगणित जले

प्रेम सरिता किनारे मिलन गाँव में
गीत गाओ मधुर स्वप्न की छाँव में
हाथ में हाथ ले इस तरह से चलो
प्रेम की यह कथा युग युगों तक चले

खेल बचपन बिताया जहाँ आज तक
वह गली घाट, वह याद अँगना रहे
हाथ मेंहदी रहे, आँख काजल रहे
साथ साजन रहे, हाथ कँगना रहे

यह न जीवन निरा प्यार ही प्यार है
यह न जीवन निरी हार ही हार है
धूप में छाँव में, रात में प्रात में
नेह विश्वास का दीप पथ में जले

दूर मंजिल बड़ी, रास्ता भी कठिन
एक साथी बिना राह कैसे कटे
पार नाविक बिना नाव कैसे लगे
एक पतवार से नाव कैसे चले

आत तक ये बहुत दिन अकेली चली
आज तक तुम बहुत दिन अकेले चले

# प्रिय विदुला की विदाई पर

तुम जाओ, तुम जाओ
तुम जाओ सजन घर जाओ

मोती बिन सीप नहीं बनता
बिन साथी पंथ नहीं कटता
बिन बाती दीप नहीं जलता
तुम जाओ, तुम जाओ
तुम जाओ, सजन घर जाओ

आँचल में सबका प्यार लिये
नयनों में सुख संसार लिये
इस देहरी का अधिकार लिये
तुम जाओ, तुम जाओ
तुम जाओ, सजन घर जाओ

कुछ धरती कुछ आकाश लिये
बगिया की गंध सुवास लिये
मन में अविचल विश्वास लिये
तुम जाओ, तुम जाओ
तुम जाओ सजन घर जाओ

प्रियतम के मन का राज लिये
सब वैभव सब सुख साज लिये
घर के आँगन की लाज लिये
तुम जाओ, तुम जाओ
तुम जाओ, सजन घर जाओ

मम्मी की मन में याद लिये
पापा के आशीर्वाद लिये
नव जीवन का आल्हाद लिये
तुम जाओ, तुम जाओ
तुम जाओ, सजन घर जाओ

जीवन का मधुर पराग लिये
पायल का छम छम राग लिये
घूँघट में अमर सुहाग लिये
तुम जाओ, तुम जाओ
तुम जाओ, सजन घर जाओ

मन भारी, रह रह आँखें भर आयें
सबके अधरों पर हैं बस यही दुआयें
सब सुख तुमको मिल जायें
आशीषों आशीर्वादों की छाया में
अपना सुखमय संसार बसाओ

तुम जाओ, तुम जाओ
तु जाओ, सजन घर जाओ

# चि० भानु ( नाती ) के जन्म पर

सारे जहाँ से अच्छे भानु मियाँ हमारे
सूरज कोई पुकारे, चंदा कोई पुकारे

बाँहों के पालने में निंदिया तुम्हें सुलाये
मामा कभी जगाये, मामी कभी दुलारे

बाबा की आरज़ू हो दादी की हो मुरादें
नाना की हो दुआयें, नानी नज़र उतारे

हो यह ज़मी तुम्हारी, हो आस्माँ तुम्हारा
साया क़दम क़दम पर करते रहें सितारे

यह ज़िन्दगी है दरिया, मौजों से खेलना है
तूफ़ान जो भी आयें, बन जायेंगे सहारे

आसान मुश्किलें सब हो जायेंगी यक़ीनन
दिल में दिया लगन का जलता रहे तुम्हारे

ख़ुद को कभी सफ़र में तन्हा नहीं समझना
सबकी दिली दुआयें हमराह हैं तुम्हारे

चाहे चलो अकेले या मीरे कारवाँ हो
इन्सानियत का परचम हो हाथ में तुम्हारे

फूलों फलों जहाँ में, रौशन करो जहाँ को
इक्कीसवीं सदी है अब नाम में तुम्हारे

# चि० असीम के जन्म पर

कौन सा मैं अर्थ लूँ बोलो तुम्हारे आगमन का ?

या कि तुम ममतामयी माँ के हृदय की प्रार्थना हो
या पिता के वंश श्री की मधुर मंगल कामना हो
या कि दुहराई विधाता ने कथा कोई पुरानी
क्या पता तुम कौन से वटवृक्ष की सम्भावना हो

या कि तुम भू पर कोई संदेश लाये हो गगन का
या धरा पर गीत गाओगे किसी नव जागरण का
कौन हो तुम ? पंच तत्त्वों से रचित क्या देह भर हो
या कि हो संकल्प कोई तुम यहाँ नूतन सृजन का

कौन जाने भाग्य में कितना लिखा अम्बर तुम्हारे
कौन जाने भाग्य में कितनी लिखी धरती तुम्हारे
क्या पता तुम भी समय के हाथ का होगे खिलौना
या समय के पृष्ठ पर हस्ताक्षर होंगे तुम्हारे

तुम निरन्तर उच्च से हो उच्चतर से उच्चतम हो
तुम बनो कुछ भी मगर सत्यं, शिवं औ' सुन्दरम हो
आज आशीर्वाद की पावन घड़ी आशीष सबका
तुम 'असीम' असीम हो और हम सभी को मंगलम् हो

# चि० जगमग/अंकुर को आशीर्वाद

प्रश्न मन में है अनेकों फिर वही है प्रश्न मन में
किस नयन का स्वप्न हो तुम किस हृदय की प्रार्थना हो
या विधाता के अधूरे गीत का कोई चरण हो
या कि स्वर्णिम भोर की कोई सुखद सम्भावना हो

या विधाता का कोई संदेश लाये हो धरा पर
या नई आशा, नये विश्वास का दीपक बनोगे
या कि तुम अन्याय के प्रतिकार का निश्चय अटल हो
या कि युग की चेतना को नव दिशा, नव दृष्टि दोगे

या कि युग की ताड़का पर विजय का संकल्प हो तुम
या सृजन के यज्ञ में तुम राम-से प्रहरी बनोगे
या थकी हारी मनुजता के लिये कोई किरण हो
या नये युग के नये आकाश का सूरज बनोगे

क्या बनोगे, क्या करोगे यह समय के गर्भ में है
किन्तु इस पावन घड़ी आशीष तुम को है सभी का
यज्ञ जीवन हो तुम्हारा, अर्थ जीवन को नया दो
तुम जियो आदर्श बन सत्यं, शिवं औ' सुन्दरम का

# प्रिय प्रद्युमन व सुषमा के विवाह की रजत जयन्ती पर

चंदा बिन रात अंधूरी है
बिन बाती दीप अधूरा है
बिन नाविक नाव अधूरी है
स्वर बिन संगीत अधूरा है

नूपुर बिन नृत्य नहीं होता
बिन प्रतिमा मंदिर सूना है
वैसे तो सच है प्यार बिना
यह कुल संसार अधूरा है

× × × × ×

कुछ लेने के सम्बंध हुआ करते हैं
कुछ देने के सम्बंध हुआ करते हैं
पर लेन देन की सीमाओं से आगे
पावन परिणय सम्बंध हुआ करते हैं

यह बगिया यों ही भरी रहे फूलों से
नित नूतन सपनों से संसार सजाओ
आशीषों आशीर्वादों की छाया में
तुम पावन परिणय का त्योहार मनाओ

जीवन-वीणा पर गीत प्रीत के गाओ
जीवन उपवन में सदा बसन्त मनाओ

# बंगलौर के प्रति पाँच कुण्डली

बेटी अमरीका बसी, बेटा है बँगलौर
अपनी देहरी छोड़ कर हम जाँये किस ठौर
हम जाँये किस ठौर हुआ सारा घर खाली
बिन बच्चों के क्या होली है क्या दीवाली
जगमग जगमग लग रहा वैसे तो बँगलौर
अपनी दिल्ली की मगर बात ही है कुछ और

बीती यादों को लिये हम आये बँगलौर
किन्तु यहाँ पर चल रहा परिवर्त्तन का दौर
परिवर्त्तन का दौर बड़ी आँधी आई है
अच्छाई कम बहुत बुराई ही लाई है
ऐसे ही चलता रहा यदि कुछ बरसों और
अपना चेहरा खो देगा फिर काहे का बँगलौर

साड़ी से बँगलौर था, चन्दन से मैसूर
वृन्दावन का बाग था हरियाली भरपूर
हरियाली भरपूर, इमारत है बहुमंज़िली
चाऊमिन से मत खा गई डोसा-इडली
टॉप जीन्स का नशा चढ़ा लड़की लड़कों पर
साड़ी हारी थकी घूमती है सड़कों पर

जो नगरों में था कभी नगरों का सिरमौर
उजड़ा उजड़ा लग रहा अब वो ही बँगलौर
अब वो ही बँगलौर, नाच घर बढ़ते जाते
भटके यौवन को मदिरालय राह दिखाते
ऐसी वर्षा हो रही वैभव की घनघोर
लगता है वह जायेगा, इसमें ही बँगलौर

क़दम क़दम पर झील थीं हरियाली चहुँओर
पर विकास के नाम पर उजड़ रहा बँगलौर
उजड़ रहा बँगलौर, पेड़ नित कटते जाते
नभ छूते भवनों के जंगल उगते जाते
गहन प्रदूषण बढ़ रहा इतना चारों ओर
यादों में रह जायेगा अब केवल बँगलौर

# प्रिय आलोक व विवेक के गृह प्रवेश पर

# घर—एक दर्शन

सघन छाँव में तरुवर की बैठे बैठे ही घर की
धूमिल सी कल्पना मनुज के मन में आई होगी
कहीं नीड़ तिनके तिनके से बनते देखा होगा
ईंट ईंट रख कर मन में दीवार बनाई होगी

× × ×

तन-मन-धन से पौरुष बल से भवन बनाया होगा
मन को व्याकुल करती होगी पर सुख की अभिलाषा
प्रश्न उठे होंगे फिर मन में घर किसको कहते हैं
चिन्तन-दर्शन में पाई होगी घर की परिभाषा

× × ×

घर है एक विचार, नहीं दीवारों तक सीमित है
घर है हृदय उदार, भावना का निस्सीम गगन है
घर है माँ की गोद, सुरक्षा है जिसमें आँचल-सी
घर जीवन की त्यागमयी गाथा का प्रथम चरण है

प्राण प्रतिष्ठा ही उसका शृंगार साज सज्जा है
आशीषों का जिस आँगन पर वरद हस्त होता है
जहाँ परस्पर प्यार, अतिथि सत्कार, आयु सम्मानित
वह घर छोटा होकर के भी बहुत बड़ा होता है

× × ×

## 'आशीर्वाद'

सुखमय हो, मंगलमय हो घर, सबका हो अभिनन्दन
सदा रहे संतोष-सम्पदा, यज्ञ पूर्ण हो जीवन
हरा भरा तुलसी का बिरवा शोभित हो आँगन में
सजे अल्पना सुन्दर घर की देहरी पर नित नूतन

ISBN 978-81-7064-100-1

9 788170 641001

आर्य पब्लिशिंग हाउस

1569/30 नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली-110005

फोन : 011-28752604, 28752745 फ़ैक्स : 011-28756921